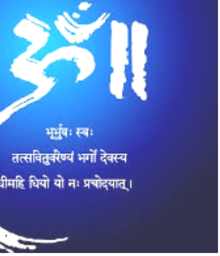

वेद से वेदांत तक
भावानुवाद
सुरेश चौधरी

कोलकाता

ISBN : 978-93-84435-06-6
शुक्तिका प्रकाशन

१२D, एकता हिबीस्कस,
५६ क्रिस्टोफर रोड,टेंगरा
कोलकाता ७०००४६
फोन: ०३३ २३२८ ०४३८
ईमेल : editor@shuktika.com
वेब : www.shuktika.com

सुरेश चौधरी 'इंदु'

सर्वाधिकार लेखकाधिन सुरक्षित
मूल्य: ३००/-
२०१४

मुद्रक: मिश्का इन्फोटेक प्राइवेट लिमिटेड
कोलकाता

POETRY BOOK: VED SE VEDANT TAK BY SURESH CHOUDHARY

सुरेश चौधरी 'इंदु'

अनुक्रमणिका

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

समीक्षा

ALPANA GOSHWAMI
EX-PROFESSOR AND HEAD SANSKRIT DEPARTMENT
CITY COLLEGE , KOLKATA 700009

Vedic litrature is transcendential, because it is “अपौस्पेय” i.e. not spoken by some mortal, but it is the eternal voice of the Supreme God. So it is the original knowledge or “आदिज्ञान”. The ultimate purpose of the vedic litrature is to know the Supreme Lord. Geeta says “वेदैश्च सर्वैह्मेव वेद्यः” –the aim of all the vedas is to know me.” But literary knowledge is not sufficient to understand Him. As He says “भक्त्या मामभिजानाति भावान यश्चास्मि तत्वतः “(गीता १८.५५) One can know me only by devotion and not by material intelligence,.

There is a story about Lord Chaitany Mahaprabhu, once he went to visit the temple of Lord Ranganath in south India, there a brahmin used to recite daily entire Bhagwat Geeta with flowing tears, pandits, around him made fun of him, because he could not pronounce the sanskrit words correctly. But the brahmin did not bother about what they say, Mahaprabhu saw the brahmin and approached him, He asked the brahmin “my dear what portion of te book gives you so much pleasure? The bramin looked to-wards Mahaprabhu and said, “My Lord, I am not very learned and don’t even” understand the meaning of the sanskrit words, I can’t even read the boo correctly , still I read the book daily because it is order of my spritual master” Mahaprabhu asked ‘what brings tears to your eyes?"

He replied ‘whenever I sit with the book the picture of shree krishna as ‘Parthsarthi” comes to my mind .And as soon as I see him I remembers how kind , humble and loving Lord Krishna is. He is so bhakt vatsal and kind that He even became the sarathi of Arjun. This thought makes me cry. “

Chaitnay Mahaprabhu embraced him with love and you have got the real perfection in reciting Geeta, So not Scholarship but this kind of devotion and love for Bhagwan is the prime condition to realise the all powerful God.

Mr. Suresh Kumar Choudhary in hs book “वेद से वेदांत तक” has exposed his heartful love and devotion towars the almighty all powerful Supreme Lord. Though he is not qualified sanskrit scholar but is a chartered accountant he very skillfully converted the upnishad’s shloka’s in prayers. His prayers following vedic verses

show lucidity clarity and beauty of the original text. He deserves the praise of admireres of sanskrit learning.

ALPANA GOSHWAMI-KOLKATA

प्रस्तावना

“विद्” धातु का अर्थ है जानना एवं वेद शब्द की उत्पत्ति इसी धातु से हुई है| हिंदू धर्म के प्राचीनतम ग्रंथों के रूप में वेदों को हिंदू धर्म में मान्यता प्राप्त है और वैदिक धर्म एवं वैदिक संस्कृति का प्रादुर्भाव वेदों में उल्लेखित नियमों एवं व्याख्याओं के आधार पर ही हुआ है| ऐसी मान्यता है कि इनके मन्त्रों को परमेश्वर ने प्राचीन ऋषियों को अप्रत्यक्ष रूप से सुनाया था। इसलिए वेदों को श्रुति भी कहा जाता है। वेद प्राचीन भारत के वैदिक काल की वाचिक परम्परा की अनुपम कृति है जो पीढी दर पीढी पिछले चार-पाँच

हज़ार वर्षों से चली आ रही है ।वेद ही हिन्दू धर्म के सर्वोच्च औरसर्वोपरिधर्मग्रन्थहैं। उपनिषद् हिन्दू धर्म के महत्त्वपूर्ण श्रुति धर्मग्रन्थ हैं । ये वैदिक वांग्मय के अभिन्न भाग हैं । इनमें परमेश्वर, परमात्मा-ब्रह्म और आत्मा के स्वभाव और सम्बन्ध का बहुत ही दार्शनिक और ज्ञानपूर्वक वर्णन दिया गया है । उपनिषद ही समस्त भारतीय दर्शनों के मूल स्त्रोत हैं, चाहे वो वेदान्त हो या सांख्य या जैन धर्म या बौद्ध धर्म उपनिषदों को स्वयं भी वेदान्त कहा गया है । दुनिया के कई दार्शनिक उपनिषदों को सबसे बेहतरीन ज्ञानकोश मानते हैं । उपनिषद् भारतीय सभ्यता की विश्व को अमूल्य धरोहर है । मुख्य उपनिषद १२ या १३ हैं । हरेक किसी न किसी वेद से जुड़ा हुआ है । ये संस्कृत में लिखे गये हैं । १७वी सदी में दारा शिकोह ने अनेक उपनिषदों का फारसी में अनुवाद कराया। १९वीं सदी में जर्मन तत्त्ववेता शोपेनहावर और मैक्समूलर ने इन ग्रन्थों में जो रुचि दिखलाकर इनके अनुवाद किए वह सर्वविदित हैं और माननीय हैं। इसी परम्परा को आगे बढाते हुए माननीय सुरेश चौधरी जी ने प्रमुख उपनिषदों के प्रतिनिधि श्लोकों का अनुवाद सरल एवं सरस हिंदी भाषा में करके उसे जनसाधारण हेतु भावगम्य बनाने का सराहनीय एवं सफल प्रयास किया है| माननीय चौधरी जी द्वारा रचित इन छोटी-छोटी सरल प्रार्थनाओं की श्रृंखला के माध्यम से उपनिषदों एवं वेद-वेदांगों में वर्णित ईश-वन्दनाओं एवं स्तुतियों की अप्रतिम सौंदर्य से परिपूर्ण यह रचना चौधरी जी ने सभी पाठकों को इसलिए समर्पित की है क्योंकि हिन्दुधर्म के प्राचीन ग्रंथों की संस्कृतनिष्ठ भाषा और उनका देवनागरी अनुवाद इतना क्लिष्ट है कि जनसाधारण के लिए उन्हें समझ कर उनका अनुसरण और रसगमन करना लगभग असम्भव है, इन प्रार्थनाओं के रूप में उपनिषद और वेदांगों के श्लोक बड़े सरस बन पड़े हैं| शुक्तिका प्रकाशन की ओर से मैं माननीय सुरेश चौधरी जी को हार्दिक शुभ कामनाएँ प्रदान करती हूँ |
साभार,

अंशुत्रिपाठी,

प्रधानसम्पादिका-शुक्तिकाप्रकाशन,
कोलकाता-गुडगाँव|

लेखकीय

प्रिय मित्रों,
सादर नमन,

श्री दुर्गातिविनाशनी एवं प्रांजलि के पश्चात् तीन पुस्तकें (सर्जक, भावांजलि, अक्षरों की ओट से) संयुक्त संकलन में प्रकाशित हुई, जिन्हें आप सब ने बहुत सराहा |
प्रस्तुत पुस्तक "वेद से वेदांत तक" जैसा कि नाम से प्रतीत होता है, वेदों के सार वेदांत का रूपांतर है, मुख्य नौ उपनिषद एवं वेद के दो प्रमुख सूक्तों का रूपांतर करने का प्रयास है |
रूपांतर इसलिए कह रहा हूँ कि भावानुवाद या काव्यानुवाद तो बहुत आते हैं परन्तु मुख्य श्लोकों को हम जिस अर्थ में पढ़ते हैं, वह पाठकों को सरल एवं भावानुगम्य नहीं लगता| श्लोकों को पढने से एक श्रद्धा सृजित होती है एवं मन में ईश्वर से उस श्लोक के अनुसार कुछ माँगने की प्रबल कामना होती है एवं उसे ही प्रार्थना कहते हैं अतः मूल श्लोकों के साथ; उस श्लोक के मूल-भाव को प्रार्थना-रुप में परिवर्तित कर लिखने का प्रयास किया है| उदहारण स्वरुप एक प्रार्थना दे रहा हूँ

कठोपनिषद/प्रथम अध्याय/तृतीय वल्ली

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ७ ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ८ ॥
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९ ॥

सुरेश चौधरी 'इंदु'

हे जगतपति !
विषय रूपी विष का पान करने वाले
असंयमित मन के विकारी,
कदापि सतगुण से समृद्ध हो नही सकते,
कदापि परम पद को पा नही सकते,
कदापि जन्म मृत्यु चक्र से निकल नही सकते |
परन्तु हे नाथ!
मुझे सदा सयंमी विवेकी
ऋत भाव से युक्त बनाओ,
मरण जनम से मुक्त कराओ,
निष्काम भाव से कर्म करूँ,
मृत्यु भी विशेष हो
प्रभु कृपा कभी न शेष हो |
बुद्धि रूपी सारथी के नियंत्रण में हो मन
विवेक स्थिर हो
पार संसार हो
आप करुणागार हो ||

इस प्रार्थना को पढ़ने से मन्त्र के मूल भाव स्वतः उतरते जाते हैं एवं हमारी मानसिक संतुष्टि होती है | शब्दार्थ भी सहज समझ आ जाते हैं | आशा है आपको यह ग्रन्थ संग्रहणीय, वाचनीय एवं पठनीय लगेगा | इसमें शोध कर जो पाठ्य-सामग्री दी गयी है, उसके लिए मैं गूगल स्थित विभिन्न लेखों, मृदुल कीर्ति जी, स्वर्गारोहण.ऑर्ग, स्वामी विवेकनद साहित्य, महर्षि अरविंद जी के साहित्य एवं अनेकोनेक अन्य श्रोतों का जिनकी चर्चा छुट गयी है; का आभार प्रकट करना चाहूँगा ||

साभार,
आप सभी का
सुरेश कुमार चौधरी'इंदु'

<u>उपनिषद:-एक परिचय</u>

हे प्राणदाता!
व्योम में व्याप्त शून्य की गंभीरता,
सागर की गहराई में समाई नीरवता,
समाहित करती-
धरा की सहनशीलता
ॐकार के त्रिगुणों से आभासित कर,

ब्रह्म है आत्म-चिंतन,
विष्णु; भौतिक संरक्षक
शिव; कल्याणकारी मोक्ष प्रदाता,
तीनो का प्रतिरूप ओम्,
समग्र रूप से ओम्-मय कर,
ब्रह्म का वैश्वानर
सम्पूर्ण कामनाओं को
परिपूर्ण करता तेजस रूप
ओकार!

संतति का उत्कर्ष,
ब्रह्म-ज्ञान का समर्पण
सब को सम्मानित करता
उकार!

भूत-भविष्य-वर्तमान से मुक्त
आदि-अंत-अनादि से परे प्राज्ञ ब्रह्म
मकार!
ॐकार- निर्भय ब्रह्म पद,
मेरे चित्त को इस प्रणव में,
समाहित कर |

उपनिषदों में ओम् शब्द को बहुत महत्व दिया गया है| कठोपनिषद् कहती है कि सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, जिसकी साधना के लिए सारे तप किये जाते हैं, जिसकी इच्छा से मुमुक्षुजन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं; वह पद है ओम्| यह अक्षर ही परब्रह्म है| यह अक्षर ही अपर ब्रह्म है| इस अक्षर को ही 'यही उपास्य ब्रह्म है'-ऐसा जानकर जो स्त्री या पुरूष पर अथवा अपर; जिस ब्रह्म की इच्छा करता है, उसे वही प्राप्त हो जाता है| यदि उसका उपास्य परब्रह्म हो तो वह केवल जाना जा सकता है और यदि अपर ब्रह्म हो तो प्राप्त किया जा सकता है| यही ॐकार रूप आलम्बन ब्रह्म प्राप्ति के लिए सभी आलम्बनों में श्रेष्ठ यानी सबसे अधिक प्रशंसनीय है| इस आलम्बन को जान कर साधक परब्रह्म में स्थित होकर महिमान्वित होता है तथा अपरब्रह्म में ब्रह्मत्व को प्राप्त होकर ब्रह्म के समान उपासनीय होता है| माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार यह जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान है, उसी की व्याख्या है इसलिए यह सब ॐकार ही है| इसके सिवा जो तीनों कालों से परे, अपने कार्य से ही विदित होने वाला और काल से अपरिच्छेद्य आदि है, वह भी ॐकार ही है| आत्मा और इसके पादों के साथ ॐकार और उसकी मात्राओं का तादात्म्य करते हुए कहा गया है कि वह यह आत्मा अक्षर दृष्टि से ॐकार है एवं मात्राओं के साथ संयोग

के कारण इसमें स्थैर्य है| पाद ही मात्रा हैं और मात्रा ही पाद हैं| वे मात्राएँ अकार, उकार, और मकार हैं| ब्रह्म का वैश्वानर रूप पहली मात्रा अकार है| जो उपासक इसके गूढ़ अर्थ को समझ लेता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है| तेजस ॐकार की द्वितीय मात्रा उकार है, जो उपासक इसके मूल अर्थ को ग्रहण करने की क्षमता रखता है, वह अपने ज्ञान एवं संतान का उत्कर्ष करता है| वह सबके प्रति समभाव रखता है और उसके वंश में कोई ब्रह्मज्ञानहीन पुरुष नहीं होता| प्राज्ञ ब्रह्म ॐकार की तीसरी मात्रा मकार है, जो उपासक इसे तदानुरूप ग्रहण करता है, वह इस सम्पूर्ण जगत् को माप लेता है अर्थात् इसका यथार्थ स्वरूप जान लेता है| अकार विश्व-प्राप्ति में सहायक है,उकार तेजस और मकार प्राज्ञ पर अधिपत्य का साधन है किन्तु अमात्र में किसी की गति नहीं होती| मात्रा रहित होकर ॐकार तुरीय आत्मा ही है, जो उसे इस प्रकार ग्रहण करता है, वह स्वत: अपने आत्मा में ही प्रवेश कर जाता है| आप सभी चित्त को ॐकार में समाहित करें| यह निर्भय ब्रह्मपद है| ॐमें नित्य समाहित रहने वाले व्यक्ति को कभी किसी प्रकार का भय त्रस्त नहीं करता. प्रणव ही सबका आदि, मध्य और अन्त है| प्रणव ही सबके हृदय में स्थित ईश्वर है| इस प्रकार सर्वव्यापी ॐकार को जानकर बुद्धिमान व्यक्ति शोक नहीं करता| जिसने मात्राहीन, अनन्त मात्रा वाले शिवमय ॐकार को जाना है, वही मुनि है और कोई नहीं| मुण्डकोपनिषद् के अनुसार प्रणव धनुष है एवं आत्मा बाण है| ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है| उसका सावधानी से वेधन करना चाहिए और बाण को उसमें तन्मय हो जाना चाहिए अर्थात् ब्रह्म रूपी लक्ष्य से एकरूप हो जाना चाहिए| छान्दोग्य उपनिषद् कहती है कि हमें ॐ अक्षर की ही उपासना करनी चाहिए ||

व्याकरण की दृष्टि से उपनिषद का शाब्दिक अर्थ उप+नि+सद है, जिसका अक्षरशः आशय इस प्रकार है| उप - निकट, नि-नीचे, सद-बैठना| प्राचीन वैदिक काल में उच्चासन पर पदस्थ गुरु के समीप भूमि पर आसीन होकर शिष्यों को जो श्रुति ज्ञान प्राप्त होता था, वह उपनिषद कहलाता था, इस प्रकार मूलतः उपनिषद लिखित ग्रन्थ न हो कर श्रुति ग्रन्थ हैं| इसे वेदांत भी कहते हैं| वेदों में हर मंडल के पश्चात सार बताया जाता था, उसे ही उपनिषद में परिवर्तित किया गया| उपनिषद में मुख्य रूप से कर्म, ब्रह्म, आत्मा, जीवात्मा आदि पर ही परिचर्चा है| वैदिक काल में एक ब्रह्म को सर्व माना गया है एवं २४ देवों का पूजन एवं कीर्ति वर्णन है| ये सभी देव प्रकृति जन्य हैं, (अग्नि, वायु, जल, सूर्य, पूषा......आदि)

कुछ परिस्थितियों में यह पति-पत्नी के बीच तो कहीं पिता पुत्र के बीच एवं कठोपनिषद में यह तरुण युवक एवं यम के बीच का वार्तालाप है| कहीं अध्यापक नारी रूप में हैं एवं छात्र स्वयं राजा हैं| वार्ताओं के अलावा उपनिषद में उद्धरण, दृष्टांत, दृष्टव्य, रूपक भी दिए गए हैं |

सुरेश चौधरी 'इंदु'

गुफाओं में, आश्रम में, गंगा तट पर, सदियों से यह ज्ञान बाँटा जा रहा है| यह कह सकते हैं कि उपनिषद, श्रोत्रिय ज्ञान का अद्भुत लिपिबद्ध संकलन है |

ऐतरेयोपनिषत्, ईशोपनिषत्, कठोपनिषत्, केनोपनिषत्, मांडुक्योपनिषत् मुंडकोपनिषत् प्रश्नोपनिषत्, ताश्वतरोपनिषत्, तैत्तिरीयोपनिषत, इन नौ मुख्य उपनिषदों का रूपांतर इस पुस्तक में दिया गया है |
अधिकांश उपनिषदों में या तो यह चार वेदों का विस्तारण है या व्यक्तव्य वेदांत के रूप में दिया गया है| उपनिषदों की विशेषता यह है कि यह पूर्ण रूपेण ब्रह्माण्ड में समाहित है एवं कट्टरवाद से परे है| उपनिषद सैद्धांतिक रूप से शून्य एवं शांति को प्राप्त करने का द्वार है| यह वैदिक संस्कृति का मेरुदंड है| मूलतः भारतीय दर्शन को का भाव-विस्तरण करता यह ग्रन्थ कर्म, योग, पुनर्जन्म, मोक्ष, आत्मा, ब्रह्म, ज्ञान ,प्राण को परिभाषित करता है | उपनिषद, सृष्टि की रचना उत्पत्ति के कारण एवं इसमें स्थित तत्व के विश्वास को दर्शाता है|
पाश्चात्य शोधकर्मियों के अनुसार उपनिषद ईसा से ८००-४०० वर्ष पूर्व लिखे गए हैं| बाल गंगाधर तिलक के शोध के अनुसार ये ६००० से ८०० वर्ष ईसा से पूर्व लिखे गए हैं |
यूँ तो २५० से ऊपर उपनिषदों का वर्णन है लेकिन अब तक १०८ उपनिषदों का अस्तित्व ज्ञात हैं| इनमें से १२ मुख्य उपनिषद कहे गए हैं| ये हैं ऐतरेयोपनिषत्, ईशोपनिषत्, कठोपनिषत्, केनोपनिषत्, मांडुक्योपनिषत् मुंडकोपनिषत् प्रश्नोपनिषत्, ताश्वतरोपनिषत्, तैत्तिरीयोपनिषत, छान्दोग्योप्निशत, बृहद अरण्यकोपनिषद मैतिरियानी |

वेद	सह वेद	शाखा	उपनिषद
ऋग वेद	केवल एक	शकल	ऐतेरिय
साम वेद	केवल एक	कौथुमा	छान्दोग्य
		जैमिनीय	केन
		रणनिया	
यजुर वेद	कृष्ण यजुर्वेद	कथा	कथा
		तैत्तिरीय	तैत्तिरीय, श्वेतास्वातर
		मैतिरियानी	मैतिरियानी
		हिरान्याकेशी	
		कथाका	
	शुक्ल यजुर वेद	वाजसनेयी	ईशा, बृहद आरण्यक
		काँव	

		शाखा	
अथर्व वेद	दो	शौनक	माण्डुक्य, मुण्डक
		पीपलाद	प्रश्न

१०८ उपिनषदों की यह सूची **मुक्तिक उपनिषद** में १:३०-३९ में दी गयी है : ईश = शुक्ल यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् केन = सामवेद, मुख्य उपनिषद् कठ उपनिषद् = कृष्ण यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् प्रश्न = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् मुण्डक = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् माण्डुक्य = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् तैतरीय = कृष्ण यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् ऐतरेय = ऋग् वेद, मुख्य उपनिषद् छान्दोग्य = साम वेद, मुख्य उपनिषद् बृहदारण्यक उपनिषद (१०) = शुक्ल यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् ब्रह्म = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपिनषद्कैवल्य = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् जाबाल(यजुर्वेद) = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् श्वेताश्वतर = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् हंस = शुक्ल यजुर्वेद, योग उपनिषद् आरुणेय = साम वेद, संन्यास उपनिषद् गर्भ = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् नारायण = कृष्ण यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् परमहंस = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् अमृत-बिन्दु (२०) = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् अमृत-नाद = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् अथर्व-शिर = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् अथर्व-शिख = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् मैत्रायिण = साम वेद, सामान्य उपनिषद् कौषीताक = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् बृहज्जाबाल = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् नृसिंहतापनी = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् कालाग्निरुद्र = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् मैत्रेय = साम वेद, संन्यास उपनिषद् सुबाल (३०) = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् क्षुरिक = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् मान्त्रिक = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् सर्व-सार = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् निरालम्ब = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् शुक-रहस्य = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् वज्र-सूिच = साम वेद, सामान्य उपनिषद् तेजो-बिन्दु = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् नाद-बिन्दु = ऋग् वेद, योग उपनिषद् ध्यानिबन्दु = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् ब्रह्मिवद्या (४०) = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् योगतत्त्व = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् आत्मबोध = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् परिव्रात् (नारदपरिव्राजक) = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् त्रि-षिख = शुक्ल यजुर्वेद, योग उपनिषद् सीता = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् योगचूडामिण = साम वेद, योग उपनिषद् निर्वाण = ऋग् वेद, संन्यास उपनिषद् मण्डलब्राह्मण = शुक्ल यजुर्वेद, उपनिषद् दक्षिणामूर्ति = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् शरभ (५०) = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् स्कन्द (त्रिपाड्विभूट) = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् महानारायण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् अद्वयतारक = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् रामरहस्य = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद्

रामतापिण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् वासुदेव = साम वेद, वैष्णव उपनिषद् मुद्गल = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् शाण्डिल्य = अथर्व वेद, योग उपनिषद् पैंगल = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् भिक्षुक (६०) = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् महत् = साम वेद, सामान्य उपनिषद् शारीरक = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् योगिशखा = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् तुरीयातीत = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् संन्यास = साम वेद, संन्यास उपनिषद् परमहंस-परिव्राजक = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् अक्षमालिक = ऋग् वेद, शैव पिनषद् अव्यक्त = साम वेद, वैष्णव उपनिषद् एकाक्षर = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् अन्नपूर्ण (७०) = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् सूर्य = अथर्व वेद, सामान्य उपनिषद् अक्षि = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् अध्यात्मा = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् कुण्डिक = साम वेद, संन्यास उपनिषद् सावित्री = साम वेद, सामान्य उपनिषद् आत्मा = अथर्व वेद, सामान्य उपनिषद् पाशुपत = अथर्व वेद, योग उपनिषद् परब्रह्म = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् अवधूत = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् त्रिपुरातपिन (८०) = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् देवि = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् त्रिपुर = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् कठरुद्र = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् भावन = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् रुद्र-हृदय = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् योग-कुण्डिलिन = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् भस्म = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् रुद्राक्ष = साम वेद, शैव उपनिषद् गणपित = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् दर्शन (९०) = साम वेद, योग उपनिषद् तारसार = शुक्ल यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् महावाक्य = अथर्व वेद, योग उपनिषद् पञ्च-ब्रह्म = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् प्राणाग्नि-होत्र = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् गोपाल-तपिण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् कृष्ण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् याज्ञवल्क्य = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् वराह = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् शात्यायिन = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् हयग्रीव (१००) = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् दत्तात्रेय = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् गारुड = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् किल-सण्टारण = कृष्ण यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् जाबाल(सामवेद) = साम वेद, शैव उपनिषद् सौभाग्य = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् सरस्वती-रहस्य = कृष्ण यजुर्वेद, शाक्त उपनिषद् बह्वृच = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् मुक्तिक (१०८) = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् ||

ऋषि याग्य्वाल्लिक, उद्दल्का, ऐतिरिय, पिप्लाद, सनत कुमार, श्वेतकेतु, शांडिल्य, मनु, महर्षि नारद ने उप्निशादाक्य ज्ञान बाँटा है | जीव की विचार-क्षमता का आधार उपनिषद है| जो ज्ञान, विचार, सोच उपनिषद में है वह अन्य कहीं हो ही नहीं सकता| सभ्यता के आरंभिक दिनों में लिखा गया ग्रंथ विश्व के प्रत्येक देश, जाति, धर्म में उत्सुकता जगाता है |

उपनिषद के कुछ महत्व पूर्ण कथ्य उद्धृत हैं-

ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय। ॐ शांति शांति शांतिः॥
अतिथि देवो भव:
सत्यमेव जयते

बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार मेघगर्जना रूपी दैवी वाक् कामी, क्रोधी और लोभी स्वभाव वालों के लिए एक ही संदेश देती है| कामी व्यक्ति के लिए दमन का सन्देश है क्योंकि उसमें इन्द्रिय लोलुपता होती है| क्रोधी और उद्दण्ड व्यक्ति के लिए दया का सन्देश है क्योंकि वह क्रूर होता है| लोभी व्यक्ति के लिए दान का सन्देश है क्योंकि दान करने से धनलोलुपता नहीं रह जाती| केन उपनिषद् में देवी -देवताओं तक को अभिमान न करने की चेतावनी दी गयी है क्योंकि उनकी शक्ति और उनका तेज घट जाने की सम्भावना होती है| वस्तुत: ब्रहम की शक्ति और ब्रहम का तेज ही है| कठ उपनिषद् के अनुसार इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय श्रेष्ठ हैं| विषयों से मन उत्कृष्ट है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है और बुद्धि से महान् आत्मा उत्कृष्ट है| आत्मा से मूल प्रकृति (अव्यक्त) श्रेष्ठ है और अव्यक्त से भी परब्रहम श्रेष्ठ है| परब्रहम से परे कुछ भी नहीं है, वही परम गति है| सम्पूर्ण भूतों मे छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाशवान् नहीं होता| यह सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीव्र और सूक्ष्मबुद्धि से ही देखा जाता है| विवेकी पुरुष वाक् इन्द्रिय (वाणी) का मन में उपसंहार करे, मन का प्रकाशस्वरूप बुद्धि में लय करे, बुद्धि को महत्तत्त्व में लीन करे और महान् आत्मा को मुख्य आत्मा में नियुक्त करे| अरे अविद्याग्रस्त लोगो! उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो| जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण एवं दुष्कर होती है, तत्त्वज्ञानी लोग उस मार्ग को वैसा ही दुर्गम बतलाते हैं|

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत|
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति|

वेदों के अन्तिम भाग या उच्चतम दर्शन को वेदान्त या उपनिषद् कहा जाता है| अब वेदान्त शब्द का प्रयोग उस विशेष दर्शन के लिए भी होता है जो उपनिषदों पर आधारित है| शंकर 'उपनिषद्' शब्द की व्युत्पत्ति 'सद्' धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है मुक्त करना, पहुँचना या नष्ट करना| यह एक विशेष्य है जिसमें 'उप' और 'नि' उपसर्ग और क्विप् प्रत्यय लगे हैं| इसके अनुसार उपनिषद् का अर्थ होता है ब्रहमज्ञान, जिसके द्वारा अज्ञान से मुक्ति मिलती है| जिन ग्रन्थों में ब्रहमज्ञान की चर्चा रहती है, वे उपनिषद् कहलाते हैं| उपनिषदों में आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि एवं दार्शनिक तर्क प्रणाली दोनों के दर्शन होते हैं| श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार परमेश्वर वेदों के गुह्य भाग उपनिषदों में निहित है (तद्वेद

गुह्योपनिषत्सु गूढ़ं)| उपनिषद् ऐसा साहित्य है जो आदि काल से विकसित हो रहा है| भारतीय परम्परा में उपनिषदों की संख्या एक सौ आठ मानी गयी है| शंकराचार्य ने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहद् आरण्यक और श्वेताश्वतर- इन ग्यारह उपनिषदों का भाष्य किया है और ये ही सर्वसुलभ हैं|
वेद का एक भाग होने से उपनिषदों का सम्बन्ध श्रुति या प्रकट हुए साहित्य से है| ये सनातन कालातीत हैं| अन्त:प्रेरित ऋषि यह घोषणा करते हैं कि जिस ज्ञान को वे प्रदान कर रहे हैं, उसका उन्होंने स्वयं आविष्कार नहीं किया है| वह उनके आगे बिना उनके प्रयत्न के प्रकट हुआ है (पुरुष प्रयत्नं विना प्रकटीभूत)| उपनिषद् प्रतीक शैली का प्रयोग करते हुए, दिव्य दर्शन को हमारे ऊपर छोड़ा गया ईश्वर का निश्वास कहते हैं (मुण्डक 2-1-6)| श्वेताश्वतर उपनिषद् कहती है कि ऋषि श्वेताश्वतर ने अपने तप के प्रभाव और ईश्वर की कृपा से सत्य का दर्शन किया| उपनिषदें व्यवस्थित चिन्तन से अधिक आत्मिक आलोक की साधन हैं| इनमें हमें आध्यात्मिक जीवन का वर्णन मिलता है, जो भूत, वर्तमान और भविष्य में सदा एक सा है| ब्रह्मसूत्र उपनिषदों की शिक्षा का संक्षिप्त सार है| वेदान्त के महान आचार्यों ने इस ग्रन्थ पर भाष्य रचकर उनसे अपने-अपने विशिष्ट मत विकसित किये हैं|

१९ उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ पूर्णमदः से आरम्भ होता है |
३२ उपिनषद कृष्ण यजुर्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ सहनाववतु से आरम्भ होता है |
१६ उपनिषद् सामवेद से हैं और उनका शान्तिपाठ आप्यायन्तु से आरम्भ होता है |
३१ उपनिषद् अथर्ववेद से हैं और उनका शान्तिपाठ भद्रं कर्णेभिः से आरम्भ होता है |
१० उपनिषद् ऋग्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ वण्मे मनिस से आरम्भ होता है |

जल में स्पंदन
करता तरंगों का सृजन
आत्मा होती सरिता सम
निर्मल मृदु मृदु अनवरत
सरिता का मिलन-समर्पण सागर से
अंतिम बंध है,
ज्यूँ अबाध जीवन मलय की गति
उपवन की सुरभित सुगंध है|

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

उर तो शांत जलाशय
क्यों है तरंगित
कामना की भावना से है अस्थिर
आशा की कौन सी अभिलाषा
कर गयी आत्म-मंथन से परिचित

अंतर्मन का आत्मा से मिलन
समकालीन जीवन व्यवस्था है
मन एवं तन नही आधार अस्तित्व के
अस्तित्व तो अवस्था है; स्थिर चेतन आत्मा की
शक्ति-रूप,ज्ञान-रूप, आनंद-रूप आत्मा
अहैतुक, भौतिक गुणों से परे होती आत्मा,
तन के रथ पर शोभित
चंचल मन को संचालित करती रथवान सी आत्मा,

आत्मा होती अंतस प्रकाश मानव की
चिर परिचित प्राणों के स्पंदन की
अपने ही सुख से चिर चंचल मन की
शांत उर सरोवर की विचलित आत्मा,
परमात्मा-रूपी सागर में विलय को आतुर
जीवन सरिता आत्मा
मनुज है असत्य
मानव अस्तित्व है ब्रह्म
ब्रह्म-ज्योति से मिलन को व्याकुल आत्मा
======सुरेश चौधरी
(स्त्रोत- निज शोध एवं विभिन्न गूगल स्थित लेख)

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

इशोपनिषद
यजुर्वेद

<u>इशोपनिषद् एक समीक्षा</u>

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

इशोपनिषद का आरम्भ सब उपनिषदों की तरह शान्तिपाठ से हुआ है, शान्ति मंत्र:-

पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात् पूर्ण मुदचत्ये|
पूर्णस्य पूर्ण मादाये पूर्ण मेवावशिश्यते||

हे प्रभु !
आप ही पूर्ण हो, परिपूर्ण हो,
यह जगत जो बनाया आपने वह भी पूर्ण है, सम्पूर्ण है,
पूर्णता में ही सब पूर्ण हैं,
पूर्णता में ही प्रभु
आपकी पूर्णता ही विशेष है
बस सब पूर्ण करें |

प्रारंभ में ही प्रभु की सत्ता और उनके अस्तित्व को सर्वोपरि स्वीकार कर लिया गया है| यह मान लिया गया है कि प्रभु पूर्ण हैं और इसमें कोई संशय नही| उन पर किसी प्रकार का प्रश्न चिन्ह नही लग सकता| पुराणों में कथा को समझाने के लिए विभिन्न पात्रों की रचना की गयी ताकि कथानक के रूप में वेदांत समझ आये| हम उसे ही देवता मानने लगे जबकि सत्य यह है कि ब्रह्म एक है| वह अज़र है, अगोचर है एवं पूर्ण है |

इशोपनिषद यजुर्वेद के ४० वें मंडल का सूक्त माना जाता है| इसमें जहाँ ब्रह्म की सार्वभौमता सिद्ध की गयी है, वहीं जीवन के मूल्य को कर्म-मार्ग पर चित्रित किया गया है, प्रारंभ के श्लोकों में यह कहा गया है कि प्रभु ने जो भी दिया, उसे सहर्ष स्वीकार कर किसी विशेष की लालसा नही करनी चाहिए, क्योंकि कर्म ही सर्वोपरि है| एवं जीवन तो क्षण भंगुर है| फिर आत्मा की विवेचना की गयी है कि आत्मा अचल है| यह न तो क्षरित होती है न ही समाप्त| शरीर है जो चोला बदलता है, मन पर संयम रखना प्राथमिकता है क्योंकि मन ही है जो चंचल है | ब्रह्म स्वरुप नाथ को मानते हुए कहा गया है की, बुद्धि,विद्या,संभवता आदि धीरता से प्राप्त होती है, प्रत्येक श्लोक का विस्तृत भाष्य जितना चाहे कर लें, उसका अंत नही है| अंतिम श्लोक में एकाकी नाथ को वंदन कर सब पाप कर्मों से मुक्ति माँगी गयी है ||

<u>इशोऽपनिषद</u>

<u>मन्त्र-१</u>
ईशावास्यं इदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जिथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ॥१॥

हे प्रभु !
स्थावर-जंगम जो भी बनाया
आपने इस जग में
सब है आपका
आपके ही अंतर्गत
चाहिए मुझे जितना मेरे नियत
नही रखूँ चाह
दूसरों के योग्य पदार्थ की
कृपा बनी रहे आपकी ||

<u>मन्त्र-२</u>
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतो स्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

हे नाथ !
कर्म मार्ग बतलाया आपने
निरंतर कर्म करता रहूँ
जियूं शतवर्ष तक
कर्म बंधन से रहूँ मुक्त जीवन पर्यन्तक
नही मार्ग कोई अन्य
पूर्ण हो अभिलाषा होऊँ धन्य ||

<u>मन्त्र-३</u>
असुर्या नाम ते लोका अंधेन तमसा वृताः।
ता स्ते प्रेत्याभिगछन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥

हे स्वामी !
जीवन है बहुमूल्य निधि
समाप्त करना इसे
नही मानव का धर्म
आत्महत्या; नही मानव कर्म
मृत्यु उपरान्त जाओगे उस लोक
जिस लोक रहते असुर
अन्धकार और महा अंध से आच्छादित
सिखाया आपने रहना किस तरह मर्यादित ||

<u>मन्त्र-४</u>

अनेजदैकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन पूर्वमर्षत।
तद्धावतो न्यानत्येति तिष्ठत तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥

हे परमात्मा !
आत्मा तो अचल है
क्यों मन से भी तीव्र गति से चलायमान है यह
क्यों कर जाती है अतिक्रमण यह
तीव्रता में सब गतिवान पदार्थ का
शक्ति शाली देव भी नही कर सके
वश में इसकी गति
स्थित है एक स्थान पर फिर भी
यह समर्थ है संपादित करने में
वर्षा, वायु सब
मेरी आत्मा को संयमित कर
मुझे स्थिर कर ||

मन्त्र-५
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्य बाह्यतः ॥५॥

हे स्वामी !
आप तो चल भी
और हैं अचल भी ,
दूर भी पास भी,
आप ब्रह्माण्ड के सूक्ष्मतम अनु कण में व्याप्त हो,
मुझे भी इस वाह्य अन्तः जगत में
व्याप्त कर दिग्दर्शन दो |

मन्त्र-६
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मनेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥६॥

हे नाथ!
मैं सभी प्राणियों को आत्मा में देखूँ
किसी भी प्राणी से घृणा नही करूँ
यह ही कामना अंतस में विराजे
सर्वत्र दर्शन प्राप्त होता रहे,
स्नेह पथ मिलता रहे ||

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

<u>मन्त्र-७</u>
यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

हे जग स्वामी !
आत्मलीन किया
जिस अवस्था में आपने
भली-भाँति पूर्णानुभव की अवस्था है
गुणों में एकता को
देखता हूँ स्पष्ट
क्या शोक?
क्या मोह?
करो मेरा एकत्रीकरण ||

<u>मन्त्र-८</u>
स पर्यगाच्छक्रमकायव्रणम स्नाविर शुद्धमपापविद्धम।
कविर्मनीषी परिभुः स्वयंभूर्याथातत्थ्यतो र्थान व्यदधाच्छाश्वतीभ्यहः समाभ्यः ॥८॥

हे जगन्नाथ !
दें मुझे आत्म तत्व का ज्ञान,
करें पूर्ण मेरी अनादि काल से जागृत
इच्छाओं को,
मैं आप्तकाम मनीषि की तरह निष्काम
शुद्ध और निर्दोष
बंधन रहित
सर्वज्ञ
छिद्र-रहित
शिराओं से रहित
जीव बनना चाहता हूँ
पूर्ण करो मेरी मनोकामना ||

<u>मन्त्र-९</u>
अन्धं तमः प्रविशन्ति ये विद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया रताः ॥९॥

हे प्रभु !
विद्या और अविद्या
विषम है अशेष

क्रियान्वयन करता है अविद्या का
अज्ञान के अंधकार में प्रवेश
अल्प विद्या क्षणिक विद्या तो
और घातक देती अंध कूप में भेज
सिखाएँ मुझे विद्या का सदुपयोग ||

<u>मन्त्र-१०</u>
अन्यदेवाहुर्विद्यया न्यदेवाहुर्विद्यया।
इति शुश्रुमे धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥

हे स्वामी !
बनाया आपने मुझे धीर
प्राप्त हुआ पूर्ण आत्म साक्षात्कार
अब नहीं हूँ अविचल,
क्योंकि हूँ धीर
आपने विद्या एवं अविद्या के फल को बताया
अलग अलग,
नही हूँ विचलित
प्रकृति के मोह से,
अविद्या से ऊपर मन,
मन से ऊपर बुद्धि,
बुद्धि से उपर आत्मा,
आत्मा से साक्षात्कार
अतैव सत्य
यह ही है विद्या का लक्ष्य
जो यह नही वह अविद्या
आत्म महिमा विहीन अनुभूति मिथ्या ||

<u>मन्त्र-११</u>
विद्यां चाविद्यां च यस्तद वेदोभयम सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥११॥

हे नाथ !
मैंने जाना अविद्या एवं विद्या को
साथ साथ तत्व रूप में,
बारम्बार जन्म-मृत्यु के फेरे को
पार कर
करा मुझे पूर्ण अमृत का आस्वादन ||

सुरेश चौधरी 'इंदु'

<u>मन्त्र-१२</u>
अन्धं तमः प्रविशन्ति ये सम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्या रताः ॥१२॥

हे परमेश्वर !
उन देवों का पूजन निषेध है
जिनका नही कोई अपना स्वतंत्र अस्तित्व
जिन्हें अविनाशी की पूजा का अभिमान है
अंध कूप में प्रवेश करते वे
पूजते जो उन्हें
और वे गहन अंध कूप में जाते जो
निर्विशेष ब्रह्म में लीन हैं
अतः खोने दो मुझे विशेष ब्रह्म में ||

<u>मन्त्र-१३</u>
अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात।
इति शुश्रुमे धीराणां ये नस्तद विचचिक्षिरे ॥१३॥

हे स्वामी !
दिव्य-गुण गहे
हे ब्रह्म अविनाशी!
करता रहूँ आपके रूप की अर्चना,
देव, ब्रह्मण, आचार्य, पितरों को
निस्पृह भाव से देखूँ,
प्रदान करें मुझे मुक्ति ||

<u>मन्त्र-१४</u>
संभूतिं च विनाशं च यस्तद वेदोभयम सह।
विनाशेन मृत्युम तीर्त्वा सम्भुत्या मृतमश्नुते ॥१४॥

हे नाथ !
आपके पवित्र मर्म का ज्ञान हो,
अमृतमय प्रभु आपका सहज अमृत प्राप्त हो,
निष्काम वृति से यह शुद्ध मन
कर्म ही मुख्य प्रधान हो |

<u>मन्त्र-१५</u>
हिरण्यमयेंन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥१५॥

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

हे नाथ !
सम्पूर्ण जीवन के धारण पोषण करने वाले
आपकी देदीप्यमान ज्योति के आवरण से
आपका मुख ढका हुआ है,
कृपया
उसे हटा कर
अपने शुद्ध भक्त को दर्शन दीजिये ||

मन्त्र-१६
पूषन्नेकर्षे यम् सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन समूह।
कल्याणतमं तत्ते पश्यामि यो सौ पुरुषः सो हमस्मि ॥१६॥

हे नाथ !
हे आदिज्ञानी !
हे सबके इश्वर !
हे शुद्ध भक्तों के लक्ष रूप !
हे प्रजापतियों के प्रिय !
कृपया हटा लीजिये तेज़
अपनी दिव्य किरण-राशि का
मैं आपके आनंदमय रूप का दर्शन करना चाहता हूँ
मैं और आप ज्योति एवं सूर्य के संबंधों की भाँति हैं ||

मन्त्र-१७
वायुर्निलममृतमथेदम भस्मानतम शरीरम।
ॐ क्रतो स्मर कृत स्मर क्रतो स्मर कृत स्मर ॥१७॥

हे देव !
प्राण मेरे प्रविष्ट हो जगत्प्राण में,
होता यह शरीर भस्म यथा,
रह जाते पूर्व कर्म
मन में रह जाते पूर्वकृत कर्म तथा |

मन्त्र-१८
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान विश्वानी देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्म ज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥१८॥

हे अग्निसम शक्तिशाली इश्वर !
हे सर्वशक्तिमान !

मैं भूमि पर गिरकर बारम्बार प्रणाम करता हूँ,
आपके चरणों में नमन करता हूँ,
हे देव !
अपनी प्राप्ति के सुपथ पर बढ़ा लीजिये मुझे,
उन सब पापों से मुक्त कीजिये मुझे,

जो किये हैं मैंने पूर्व में
जिन्हें आप जानते हैं
मेरी प्रगति में कोई
प्रतिबंधन न आये
आशीर्वाद दीजिये मुझे
||

केन उपनिषद

सामवेद

केन उपनिषद-परिचय

सामवेद में वर्णित वेदांत का संग्रह केन उपनिषद विश्व का प्राचीनतम साहित्य है पश्चिमी खोजकार के अनुसार ईशा से ४५०० वर्ष पूर्व यह लिखा गया जबकि बाल गंगाधर तिलक ने इसकी रचना ईशा से ६००० से ६५०० वर्ष पूर्व बताई है | यह शास्त्र सबसे शुद्ध रूप में प्राप्त है| कुल ४ खण्डों में

लिखा गया यह उपनिषद ब्रह्म ज्ञान का अनूठा उदहारण है| केन का शाब्दिक अर्थ होता है “किसका” whom अथार्थ उपनिषद किसके बारे में बता रहा है, वह जानने की वस्तु है | सामवेद के अरण्यक में केन उपनिषद कहा गया है| पाँचों इन्द्रियों के संयमक ज्ञान का वर्णन किया गया है कि उन्हें कौन नियंत्रित करता है| अग्नि, वायु, इंद्र को दृष्ट बना कर यक्ष की सार्वभौम गरिमा ब्रह्म स्वरुप परमात्मा को बताया गया है| प्राण की परिभाषा बताई गयी है, सामवेदीय 'तलवकार ब्राह्मण' के नौवें अध्याय में इस उपनिषद का उल्लेख है। यह एक महत्त्वपूर्ण उपनिषद है। इसमें 'केन' (किसके द्वारा) का विवेचन होने से इसे 'केनोपनिषद' कहा गया है। इसके चार खण्ड हैं।

प्रथम और द्वितीय खण्ड में गुरु-शिष्य की संवाद-परम्परा द्वारा उस (केन) प्रेरक सत्ता की विशेषताओं, उसकी गूढ़ अनुभूतियों आदि पर प्रकाश डाला गया है।

तीसरे और चौथे खण्ड में देवताओं में अभिमान तथा उसके मान-मर्दन के लिए 'यज्ञ-रूप' में ब्राह्मी-चेतना के प्रकट होने का उपाख्यान है। अन्त में उमा देवी द्वारा प्रकट होकर देवों के लिए 'ब्रह्मतत्त्व' का उल्लेख किया गया है तथा ब्रह्म की उपासना का ढंग समझाया गया है। मनुष्य को 'श्रेय' मार्ग की ओर प्रेरित करना, इस उपनिषद का लक्ष्य हैं।

प्रथम खण्ड

वह कौन है?

इस खण्ड में 'ब्रह्म-चेतना' के प्रति शिष्य अपने गुरु के सम्मुख अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है। वह अपने मुख से प्रश्न करता है कि वह कौन है, जो हमें परमात्मा के विविध रहस्यों को जानने के लिए प्रेरित करता है? ज्ञान-विज्ञान तथा हमारी आत्मा का संचालन करने वाला वह कौन है? वह कौन है, जो हमारी वाणी में, कानों में और नेत्रों में निवास करता है और हमें बोलने, सुनने तथा देखने की शक्ति प्रदान करता है?[1]

शिष्य के प्रश्नो का उत्तर देते हुए गुरु बताता है कि जो साधक मन, प्राण, वाणी, नेत्र, कर्ण आदि में चेतना-शक्ति भरने वाले 'ब्रह्म' का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह जीवन्मुक्त होकर अमर हो जाता है तथा आवागमन के चक्र से छूट जाता है।

वह महान चेतनतत्व (ब्रह्म) वाक् का भी वाक् है, प्राण-शक्ति का भी प्राण है, वह हमारे जीवन का आधार है, वह चक्षु का भी चक्षु है, वह सर्वशक्तिमान है और श्रवण-शक्ति का भी मूल आधार है। हमारा मन उसी की महत्ता से मनन कर पाता है। उसे ही 'ब्रह्म' समझना चाहिए। उसे न ही नेत्रों और कानों से न तो देखा जा सकता है एवं न ही सुना जा सकता है।

दूसरा खण्ड

वह सर्वज्ञ है

इस खण्ड में 'ब्रह्म' की अज्ञेयता और मानव-जीवन के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। गुरु शिष्य को बताता है कि जो असीम और अनन्त है, उसे वह भली प्रकार से जानता है या वह उसे जान गया है, ऐसा नहीं है। उसे पूर्ण रूप से जान पाना असम्भव है। हम उसे जानते हैं या नहीं जानते हैं, ये दोनों ही कथन अपूर्ण हैं।

अहंकारविहीन व्यक्ति का वह बोध, जिसके द्वारा वह ज्ञान प्राप्त करता है, उसी से वह अमृत-स्वरूप 'परब्रह्म' को अनुभव कर पाता है। जिसने अपने जीवन में ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया, उसे ही परब्रह्म का अनुभव हो पाता है। किसी अन्य योनि में जन्म लेकर वह ऐसा नहीं कर पाता। अन्य समस्त योनियाँ, कर्म-भोग की योनियाँ हैं। मानव-जीवन में ही बुद्धिमान पुरुष प्रत्येक वाणी, प्रत्येक तत्व तथा प्रत्येक जीव में उस परमात्मसत्ता को व्याप्त जानकर इस लोक में जाता है और अमरत्व को प्राप्तकरताहै।

तीसरा खण्ड

वह अहंकार से परे है

तीसरे खण्ड में देवताओं के अहंकार का मर्दन किया गया है। एक बार उस ब्रह्म ने देवताओं को माध्यम बनाकर असुरों पर विजय प्राप्त की। इस विजय से देवताओं को अभिमान हो गया कि असुरों पर विजय प्राप्त करने वाले वे स्वयं हैं। इसमें 'ब्रह्म' ने क्या किया?

तब ब्रह्म ने उन देवताओं के अहंकार को जानकर उनके सम्मुख यक्ष के रूप में अपने को प्रकट किया। तब देवताओं ने जानना चाहा कि वह यक्ष कौन है?

सबसे पहले अग्निदेव ने जाकर यक्ष से उसका परिचय पूछा। यक्ष ने अग्निदेव से उनका परिचय पूछा-'आप कौन हैं?

अग्निदेव ने उत्तर दिया कि वह अग्नि है और लोग उसे जातवेदा कहते हैं। वह चाहे, तो इसपृथ्वी पर जो कुछ भी है, उसे भस्म कर सकता है, जला सकता है।

तब यक्ष ने एक तिनका अग्निदेव के सम्मुख रखकर कहा-'आप इसे जला दीजिये।'

अग्निदेव ने बहुत प्रयत्न किया पर वे उस तिनके को जला नहीं सके। हारकर उन्होंने अन्य देवों के पास लौटकर कहा कि वे उस यक्ष को नहीं जान सके।

उसके बाद वायु देव ने जाकर अपना परिचय दिया और अपनी शक्ति का बढ़-चढ़कर बखान किया। इस पर यक्ष ने वायु से कहा कि वे इस तिनके को उड़ा दें, परन्तु अपनी सारी शक्ति लगाने पर भी वायुदेव उस तिनके को उड़ा नहीं सके। तब वायुदेव ने इन्द्र के समक्ष लौटकर कहा कि वे उस यक्ष को समझने में असमर्थ रहे। उन्होंने इन्द्र से पता लगाने के लिए कहा।

इन्द्र ने यक्ष का पता लगाने के लिए तीव्रगति से यक्ष की ओर प्रयाण किया, परन्तु उसके वहाँ पहुँचने से पहले ही यक्ष अंतर्ध्यान हो गया। तब इन्द्र ने भगवती उमा से यक्ष के बारे में प्रश्न किया कि यह यक्ष कौन था?

चौथा खण्ड
वही ब्रह्म है
इन्द्र के प्रश्न को सुनकर उमादेवी ने कहा-'हे देवराज! समस्त देवों में अग्नि, वायु और स्वयं आप श्रेष्ठ माने जाते हैं; क्योंकि ब्रह्म को शक्ति-रूप में इन्हीं तीन देवों ने सर्वप्रथम समझा था और ब्रह्म का साक्षात्कार किया था। यह यक्ष वही ब्रह्म था। ब्रह्म की विजय ही समस्त देवों की विजय है।'
इन्द्र के सम्मुख यक्ष का अन्तर्धान होना, ब्रह्म की उपस्थिति का संकेत- बिजली के चमकने और झपकने- जैसा है। इसे सूक्ष्म दैविक संकेत समझना चाहिए। मन जब 'ब्रह्म' के निकट होने का संकल्प करके ब्रह्म-प्राप्ति का अनुभव करता हुआ-सा प्रतीत हो, तब वह ब्रह्म की उपस्थिति का सूक्ष्म संकेत होता है।
जो व्यक्ति ब्रह्म के 'रस-स्वरूप' का बोध करता है, उसे ही आत्मतत्त्व की प्राप्ति हो पाती है। तपस्या, मन और इन्द्रियों का नियन्त्रण तथा आसक्ति-रहित श्रेष्ठ कर्म, ये ब्रह्मविद्या-प्राप्ति के आधार हैं। वेदों में इस विद्या का सविस्तार वर्णन है। इस ब्रह्मविद्या को जानने वाला साधक अपने समस्त पापों को नष्ट हुआ मानकर उस अविनाशी, असीम और परमधाम को प्राप्त कर लेता है।
तब इन्द्र को यक्ष के तात्विक स्वरूप का बोध हुआ और उन्होंने अपने अहंकार का त्याग किया।
अन्त में ब्रह्मवेत्ता जिज्ञासु शिष्यों को बताता है कि इस उपनिषद द्वारा तुम्हें ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग दिखाया गया है। इस पर चलकर तुम ब्रह्म के निकट पहुँच सकते हो।

केन उपनिषद

ॐ श्री परमात्मने नमः
शांति पाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।
सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा
मा ब्रह्म निराकारोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

हे नाथों के नाथ !
पूर्ण रूपेण शक्तिमान हों,
मेरे अंग, मेरी वाणी, मेरे प्राण,
मेरे चक्षु, मेरे कर्ण, मेरा बल
एवं सब इन्द्रियों का संबल
मेरे गहन सम्बन्ध हों,
उपनिषदों में स्थित ब्रह्म से
मेरे उस परम ब्रह्म तत्व में लीनता हो,
जो ताप त्रय का निवारण करता है,
आपकी धर्म मय उपस्थिति में तन्मयता हो ||

<u>प्रथम खंड</u>

<u>मन्त्र १//१</u>
ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥१॥

हे देव !
आप ही से प्रेरित वाणी हमारी,
आप से ही हैं समस्त कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय इन्द्रियाँ मेरी
अति चपल मन का संपादक नियुक्ति कर्ता भी आप
प्राण के प्रेरक एवं जिज्ञासा के पूरक धर्ता भी आप
वाणी के प्रदाता भी आप
मुझ अज्ञानी की मीमांसा को पूर्ण करें ||

<u>मन्त्र=१//२</u>
श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः ।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥२॥

हे अखिलेश्वर !
आप सर्व ज्ञानी भूतेश्वर हैं,
आप श्रवन इन्द्रियों के धारक श्रवन हैं,
मन के चालक आदि कारण मन हैं,
वाक् के प्राण के संयोजक वाक् एवं प्राण हैं,
नेत्रों के नेत्र एक मात्र आप हैं,
प्रभु मुझे जीवन्मुक्त करें
मैं पुनः जगत में नही आऊँ ||

<u>मन्त्र=१ //३</u>

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः ।
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् ॥३॥

हे स्वामी !
ब्रह्म की महिमा अपरम्पार,
न तो मन , न प्राण, पहुँच पाते वहां तक,
न तो चेतन , न जड़ यह है सर्वदा भिन्न
ब्रह्म तत्व के ज्ञान की विधि बतलाओ मुझे
उर्वजों का दिया ज्ञान प्राप्त कराओ मुझे
ब्रह्म ही नित्य है , ब्रह्म ही सत्य है ||

<u>मन्त्र=१//४</u>
यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

हे जगदीश!
मुझमे इतनी सामर्थ्य कहाँ,
कर सकूँ ब्रह्म का वर्णन,
मेरी वाणी में इतनी प्रबलता कहाँ
कह सके किंचित का चित्रण,
ब्रह्म तत्व तो है वाणी से,
ब्रह्म तत्व तो है अतिशय अतीत
प्रेरक ज्ञाता प्रवर्तक जो भी है
वाणी से है प्रतीत ||

<u>मन्त्र=१//५</u>
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५॥

हे नाथ !
पर ब्रह्म स्वरुप आप
मन, बुद्धि, से परे हैं,
इतनी मनोशक्ति कहाँ की
भाषित कर सके ब्रह्म को
ब्रह्म शक्ति से ही मन
समर्थ है अहम के मनन को,
मेरी बुद्धि एवं मन में इतनी सामर्थ्य दो
परब्रह्म की मीमांसा कर सकूँ ||

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

<u>मन्त्र=१//६</u>
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥६॥

हे स्वामी !
आपने जगत तो दृष्टिमान बनाया,
सारे दृश्य दृष्टव्य बनाये
दृष्टि और नेत्र एक दूसरे के हैं पूरक नही गंतव्य
इन इन्द्रियों से परे अति भव्य
पर ब्रह्म प्रभु आप
इस शक्ति अंश से
दृष्टिगोचर है जग
प्रभु आपका ध्यान रहे
प्रभु आपकी शक्ति हो कर्तव्य ||

<u>मन्त्र=१//७</u>
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥७॥

हे नाथ !
इन कर्ण इन्द्रियों में इतनी सामर्थ्य कहाँ
जो पर ब्रह्म का गुणगान सुन सके
यह तो मात्र जगत की प्रस्तुति की श्रोता हैं
पर ब्रह्म तो अतिशय परे हैं
मुझे इतनी क्षमता प्रदान करें प्रभु
की मेरे कर्ण परब्रह्म की
प्रसंशा को सुन सकें ||

<u>मन्त्र=१//८</u>
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥८॥

हे नाथ !
प्रेरक प्रवर्तक है यह शक्तिशाली मन
प्रभु आप हो नित्य,
प्राण हमारे प्राकृतिक शक्ति सीमा से परे हैं,
यह मर्म ही है औचित्य,
प्रभु अंश बसा है इन प्राण में
प्रवृत जीव का है कर्म,

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

कृपा करो, रहे यही धर्म ||

<u>द्वितीय खंड</u>

<u>मन्त्र=२//१</u>
यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् ।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमाँस्येमेव ते मन्ये विदितम् ॥१॥

हे प्रभु !
न तो मैं यह मानता कि मैं अति विज्ञ
मैं यह मानता की मैं ब्रह्म से हूँ अनभिज्ञ
मति मेरी भ्रमित
मन मेरा प्राण मेरा
रह ब्रह्माण्ड में
है ब्रह्मांश न कि पूर्ण ब्रह्म
यह जो ब्रह्मांश है वह तो अंश का भी अंश है,
अतः मुझे कुछ तो विज्ञ कर ||

<u>मन्त्र-२//२</u>
नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥२॥

हे जगत्पिता !
वेदग्य नही मैं
ब्रह्म है किंचित,
ज्ञेय अज्ञेय से अनभिज्ञ नितांत
वेदज्ञ, ज्ञान मेरी क्षमता से परे
कृपा करो इतनी
ज्ञातव्य, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय
की हो पहचान मुझे ||

<u>मन्त्र=२//३</u>
यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥३॥

हे नाथ !
मैं ब्रह्म से अनभिज्ञ,
सदा समझा अपने को विज्ञ
विज्ञ भी होते अनभिज्ञ हैं

मुझे ब्रह्म ज्ञान का भान कराओ,
मुझे ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान के अभिमान से परे रखो ||

<u>मन्त्र=२//४</u>
प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥४॥

हे स्वामी !
आप सुधा स्वरुप ब्रह्म हो,
आपकी महिमा अपरम्पार है,
ब्रह्म का यह स्वरुप ही वास्तविक ज्ञान है,
यह ज्ञान शक्ति
ब्रह्म से ही प्राप्य है
इस ज्ञान से ही ब्रह्म ज्ञात है,
मुझे ऋत ज्ञान से परिचित कराओ ||

<u>मन्त्र=२//५</u>
इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥५॥

हे नाथ !
यह सत्य है की मनुज जीवन देकर
किया कृतार्थ
दुर्लभ दुसाध्य
वर्णित वेदों में यह रहस्य
इस जन्म में ब्रह्म लीन हो अमर हो जाऊँ
ब्रह्म का साक्षात्कार कर
अमरत्व पा,
जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्त करें ||

<u>तृतीय खंड</u>
<u>मन्त्र=३//१</u>
ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त ।
त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥१॥

हे जगतस्वामी !
अभिमानी देवों ने
माना ब्रह्म स्वयं को
अहम में अतिशय परिणित

विनाशक अहम होता,
देवता तो निमित हैं,
ब्रह्म सर्वोपरि हैं,
आप शक्ति स्वरुप अजेय हैं,
सदा रक्षा करें ||

<u>मन्त्र=३//२</u>
तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति॥२॥

हे नाथ !
देवगण होते मिथ्याभिमानी
आप अनभिज्ञ नही,
यक्ष के रूप पधारते आप हित दर्प नाश को,
आप के दिव्य रूप देख
देवगण असमंजित हैं
आप सर्व हित वर्धक बनें रहें ||

<u>मन्त्र =३//३</u>
तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति ॥३॥

हे स्वामी !
जब अग्नि देव से विनम्र कहा गया,
दिव्य यक्ष हैं महा
तज अपनी बुद्धि शक्ति का गर्व
अग्नि देव स्वीकारें यक्ष शक्ति को भान
नाथ मुझे भी दीजिये ज्ञान ||

<u>मन्त्र=३//४-६</u>
तदभ्यद्रवत्तमभ्य वदत्कोऽसीत्यग्निर्वा ।
अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥४॥
तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदँ सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥५॥
तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति । तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक ।
दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥६॥

हे नाथ !
एक प्रश्न अग्नि देव से-
क्या सर्वभौम मंयक देव आप ही हैं?
तेजपुंज स्वरुप, जातवेदा बताया अग्नि देव ने,
हे जातवेदा, क्या सर्व शक्तिमान हैं आप?

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

सगर्व दिया उत्तर अग्निदेव ने,
धरा पर जो कुछ भी है सब मेरी सामर्थ्य
करूँ भष्म
कुछ भी नही मुझसे असामर्थ्य |
एक तृण धर कहा यक्ष ने भस्म कर तो जानूँ
आपकी अग्नि सामर्थ्य को मैं मानूँ
पूर्ण दाहक शक्ति व्यर्थ हुई
हतप्रभ थे देव
अनभिज्ञ अग्नि देव हुए हतप्रभ ||

<u>मन्त्र=३//७-९</u>
अथ वायुमब्रुवन्वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥७॥
तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा ।
अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥८॥
तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदँ सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति ॥९॥

हे दिव्य देव !
कौन हैं पूछे आप
क्या आप ही हैं सार्वभौम?
हे अहम मंयक वायुदेव!
हाँ-हाँ
मैं ही मत्रिश्रावा प्रसिद्द वायु हूँ
कहा दर्प से जब
सृष्टि संसर्ग से तब |
भूलोक में वायु देव विचरण हैं करते
इतनी शक्ति भव्य लिए
उड़ा दे जो भी दिखे उसे अपना भार दिए |
एक तृण रख आपने जो आदेश दिया
न उड़ सका वायु के वेग से
प्रभु आपकी शक्ति रोके रहे जिसे
उड़ा सके कौन उसे
वायु तत्व का अर्थ क्या
आपके आगे किसी की सामर्थ्य क्या ||

<u>मन्त्र=३//१० -१२</u>
तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न ।
शशाकादतुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१०॥
अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति ।
तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥११॥

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमाँ ।
हैमवतीं ताँहोवाच किमेतद्यक्षमिति ॥१२॥

हे देव !
कौन है अतिशय अप्रतिम शक्तिमय
बुद्धि शक्ति के गर्व से गर्वान्वित वायु देव तो नही?
ज्ञात कर दूर करें व्यथा यहीं |
सब देवगण मिल पूछ रहे
इंद्र देव से
कौन है महा महिम?
दिव्य यक्ष सन्मुख
इंद्र त्वरित कहें
ब्रह्म तो निमिष मात्र में तिरोहित हुए|
यक्ष के स्थान इंद्र हुए स्थित
उमा रूपा ब्रह्म विद्या
देख हुए अचंभित
कहें उमरुपा ब्रह्म दिव्य यक्ष से
सादर विनीत नही कोई सर्वज्ञ आपसा ||

<u>चतुर्थ खंड</u>

<u>मन्त्र =४//१</u>
सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये ।
महीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥१॥

हे दिव्य यक्ष !
इंद्र ने जब पाया उत्तर
उमा शक्ति ब्रह्म से,
यक्ष तो हैं परब्रह्म स्वयं,
दानव-देव युद्ध में जब हुआ ता अभिमान देवों को
रूप धरा था
परम ब्रह्म प्रभु ने
तब दिव्य यक्ष का मानमर्दन को |

<u>मन्त्र =४//२</u>
तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान्यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ।
ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥२॥

हे विश्व रचियता !

आपके प्रभाव को पहचान
इंद्र, अग्नि, वायुदेव ने,
नमन किया
आप ही विश्व-प्रणम्य हो,
आप ही तत्व मर्मज्ञ हो,
आप ही सर्वज्ञ हो ||

<u>मन्त्र=४//३</u>
तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स ह्येनन्नेदिष्ठं ।
पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥३॥

हे परमेश्वर !
ज्ञात हुई जब इंद्र को
आपकी सर्वज्ञता
अनुपम भक्तवत्सल प्रभु
आपने इंद्र को दिया श्रेष्ठता का आसन,
सिद्ध हुआ आप ही हो
सच्चिदानंद अगोचर
साक्षात् परम ब्रह्म ||

<u>मन्त्र=४//४</u>
तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदाइतीन् ।
न्यमीमिषवदा इत्यधिदैवतम् ॥४॥

हे स्वामी !
अधिदैविक उपदेश
का मर्म ज्ञात करावें,
साक्षात् दर्शन की उत्कट इच्छा है,
आप परम ब्रह्म
आपके दर्शन बिन
मन व्याकुल है,
अति शीघ्र दर्शन दें |

<u>मन्त्र=४//५</u>
अथाध्यात्मं यद्देतद्गच्छतीव च मनोऽनेन ।
चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णँ सङ्कल्पः ॥५॥

हे नाथ !
मन अति चपल

सन्निकट रहता ब्रह्म के
साकार हो या निराकार
अतिशय यह आपमें निमग्न रहे
प्रेम में व्याकुल रहे
आपका साक्षात्कार हो
यही अभिलाषा आकुल रहे |

<u>मन्त्र=४/६</u>
तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य ।
एतदेवं वेदाभि हैनँ सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥६॥

हे परमेश्वर !
आप सब प्राणियों में प्रिय
निरंतर नित्य हो,
भक्त मैं आनंदित
आत्मीय हूँ,
बस आराधना यही कि सम्मान पाता रहूँ |

<u>मन्त्र=४//७</u>
उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥७॥

हे गुरुदेव !
ब्रह्म मर्म का ज्ञान दे,
यथोचित
हर संभव विद्या
कीजिये व्यक्त,
सुनने सुनाने के लिए
ब्रह्म विद्या से कीजिये
अभिसक्त |

<u>मन्त्र=४//८</u>
तसै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥८॥

हे परमपिता ब्रह्म !
आपको ही लक्ष्य माना,
निष्काम तप-जप का भाव जाना
वेदों के धर्म का जागरण
स्वभाव का आचरण
मान कर चाहूँ

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

असाध्य ब्रह्म ज्ञान
कृपा करें नाथ |

<u>मन्त्र ४//९</u>
यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते ।
स्वर्गे लोके ज्येये
प्रतितिष्ठति
प्रतितिष्ठति ॥९॥

हे प्रभु !
उपनिषद रूपी
विद्या
आत्म तत्व से
समृद्ध
कर्म चक्र से
आबद्ध
आवागमन चक्र से
निषिद्ध
पाप-पुण्य से परे
प्राप्त हो मुझे
इतनी कृपा करें |

कठोपनिषद

यजुर्वेद

<u>कठोपनिषद-परिचय</u>

सुरेश चौधरी 'इंदु'

कृष्ण यजुर्वेद शाखा का यह उपनिषद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपनिषदों में है। इस उपनिषद के रचयिता कठ नाम के तपस्वी आचार्य थे। वे मुनि वैशम्पायन के शिष्य तथा यजुर्वेद की कठशाखा के प्रवर्तक थे। इस उपनिषद में दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्लियाँ हैं, जिनमें वाजश्रवा-पुत्र नचिकेता और यम के बीच संवाद हैं।

<u>प्रथम अध्याय</u>

इस अध्याय में नचिकेत अपने पिता द्वारा प्रताड़ित किये जाने पर यम के यहाँ पहुँचता है और यम की अनुपस्थिति में तीन दिन तक भूखा-प्यास यम के द्वार पर बैठा रहता है। तीन दिन बाद जब यम लौटकर आते हैं, तब उनकी पत्नी उन्हें ब्राह्मण बालक अतिथि के विषय में बताती है। यमराज बालक के पास पहुँचकर अपनी अनुपस्थिति के लिए नचिकेता से क्षमा माँगते हैं और उसे इसके लिए तीन वरदान देने की बात कहते हैं। वे उसे उचित सम्मान देकर व भोजन आदि कराके भी सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। तदुपरान्त नचिकेता द्वारा वरदान माँगने पर 'अध्यात्म' के विषय में उसकी जिज्ञासा शान्त करते हैं।

<u>प्रथमवल्ली</u>

कथा इस प्रकार है कि किसी समय वाजश्रवा ऋषि के पुत्र वस उद्दालक मुनि ने विश्वजीत यज्ञ करके अपना सम्पूर्ण धन और गौएं दान कर दीं। जिस समय ऋत्विजों द्वारा दक्षिणा में प्राप्त वे गौएं ले जाई जा रही थीं, तब उन्हें देखकर वाजश्रवस उद्दालक मुनि का पुत्र नचिकेता सोच में पड़ गया; क्योंकि वे गौएं अत्यधिक जर्जर हो चुकी थीं। वे न तो दूध देने योग्य थीं, न प्रजनन के लिए उपयुक्त थीं। उसने सोचा कि इस प्रकार की गौओं को दान करना दूसरों पर भार लादना है। इससे तो पाप ही लगेगा। ऐसा विचार कर नचिकेता ने अपने पिता से कहा-'हे तात! इससे अच्छा तो था कि आप मुझे ही दान कर देते।' बार-बार ऐसा कहने पर पिता ने क्रोधित होकर कह दिया-'मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ ।'पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए नचिकेता यम के द्वार पर जा पहुँचा और तीन दिन तक भूखा-प्यासा पड़ा रहा। जब यम ने उसे वरदान देने की बात कही, तो उसने पहला वरदान माँगा।

<u>पहला वरदान</u>

'हे मृत्युदेव! जब मैं आपके पास से लौटकर घर जाऊँ, तो मेरे पिता क्रोध छोड़, शान्त चित्त होकर, मुझसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करें और अपनी शेष आयु में उन्हें कोई चिन्ता न सताये तथा वे सुख से सो सकें।' यमराज ने 'तथास्तु, 'अर्थात 'ऐसा ही हो' कहकर पहला वरदान दिया।

दूसरा वरदान

'हे मृत्युदेव! आप मुझे स्वर्ग के साधनभूत उस 'अग्निज्ञान' को प्रदान करें, जिसके द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त हुए पुरुष अमरत्व को प्राप्त करते हैं।' यमराज ने नचिकेता को उपदेश देते हुए कहा-'हे नचिकेता! तुम इस 'अग्निविद्या' को एकाग्र मन से सुनो। स्वर्गलोक को प्राप्त कराने वाली यह विद्या अत्यन्त गोपनीय है।' तदुपरान्त यमराज ने नचिकेता को समझाया कि ऐसा यज्ञ करने के लिए कितनी ईंटों की वेदी बनानी चाहिए और यज्ञ किस विधि से किया जाये तथा कौन-कौन से मन्त्र उसमें बोले जायें। अन्त में नचिकेता की परीक्षा लेने के लिए यमराज ने उससे अपने द्वारा बताये यज्ञ का विवरण पूछा, तो बालक नचिकेता ने अक्षरश: उस विधि को दोहरा दिया। उसे सुनकर यमराज बालक की स्मरणशक्ति और प्रतिभा को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा-'हे नचिकेता! तेरे माँगे गये तीन वरदानों के अतिरिक्त मैं तुम्हें एक वरदान अपनी ओर से यह देता हूँ कि मेरे द्वारा कही गयी यह 'अग्निविद्या' आज से तुम्हारे नाम से जानी जायेगी। तुम इस अनेक रूपों वाली, ज्ञान-तत्त्वमयी माला को स्वाकर करो।'

नचिकेता को दिव्य 'अग्निविद्या' प्राप्त हुई। इसलिए उस विद्या का नाम 'नचिकेताग्नि' (लिप्त न होने वाले की विद्या) पड़ा। इस प्रकार की त्रिविध 'नचिकेत' विद्या का ज्ञाता, तीन सन्धियों को प्राप्त कर, तीन कर्म सम्पन्न करके जन्म-मृत्यु से पार हो जाता है और परम शान्ति प्राप्त करता है। आचार्यों ने नचिकेत विद्या को 'प्राप्ति,' 'अध्यायन' और 'अनुष्ठान' तीन विधियों से युक्त कहा है। साधक को इन तीनों के साथ आत्म-चेतना की सन्धि करनी पड़ती है, अर्थात स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर को इस विद्या से अनुप्राणित करना पड़ता है। इस प्रक्रिया को 'त्रिसन्धि' प्राप्ति कहा जाता है। कुछ आचार्य माता-पिता और गुरु से युक्त होने को त्रिसन्धि' कहते हैं। इन सभी को दिव्याग्नि के अनुरूप ढालते हुए साधक जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। अब उसने यमराज से तीसरा वर माँगा।

तीसरा वरदान

'हे मृत्युदेव! मनुष्य के मृत हो जाने पर आत्मा का अस्तित्त्व रहता है, ऐसा ज्ञानियों का कथन है, परन्तु कुछ विद्वानों की मान्यता है कि मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता। आप मुझे इस सन्देह से मुक्त करके बतायें कि मृत्यु के पश्चात आत्मा का क्या होता है?' नचिकेता के तीसरे वरदान को सुनकर यमराज ने उसे समझाया कि यह विषय अत्यन्त गूढ़ हैं इसके बदले वे उसे समस्त विश्व की सम्पदा और साम्राज्य तक दे सकते हैं, किन्तु वह यह न पूछे कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है; क्योंकि इसे जानना और समझना अत्यन्त अगम्य है, परन्तु नचिकेता किसी भी रूप में यमराज के प्रलोभन में नहीं आया और अपने माँगे हुए वरदान पर

ही अड़ा रहा।

<u>कठोपनिषद</u>

<u>शांति पाठ</u>

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।

हे स्वामी !
आप ही जगतगुरु
मैं गुरु सह करूँ नमन
मैं शिष्य अज्ञानी
रक्षा करो, पोषण करो,
ज्ञान का दो भण्डार
शक्ति दो
तेजोमय हो निज संसार
विजयी रहें सदा बुद्धि ज्ञान के चयन में,
ताप त्रय का हो विनाश
प्रेम ही प्रेम हों नयन में
मेरे गुरु के संग रहे सदा पोषण में |||

<u>|| काठकोपनिषदि प्रथमाध्याये प्रथमा वल्ली ||</u>

<u>श्लोक =१//१//१-४</u>
ॐ अशन् ह वै वाजश्रवस: सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥१॥
तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानसु श्रद्धा आविवेश सोऽमन्यत ॥२॥
पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रिया: ।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥३॥
स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यतीति ।
द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति॥४॥

हे नाथ !
उपनिषदों में श्रेष्ठ ॐ कार है,
वाजश्रवा मुनि के पुत्र नचिकेता था दानवीर महान
वेदों का था प्रज्ञ
विश्वजीत था किया यज्ञ |
जीर्ण गौ दान देख

विचलित था
बाल नचिकेता |
व्यर्थ वह दान होता
जिसका न कोई उपयोग
पिता मेरे क्यों प्रसन्न हो रहे
दे जीर्ण गौ विनियोग |
मैं पुत्र अति प्रिय तात का
क्यों दे रहे किसे दे रहे
प्रश्न बारम्बार उठ रहा
क्रोधित ऋषि ने
नचिकेता को मृत्यु को दे दिया
प्रश्न व्यग्र कर रहा
नाथ बतलाएं जरा
नचिकेता ने ऐसा क्या किया
क्यों किया ||

<u>श्लोक=१//१//५ -८</u>
बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यम:।
किं स्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥५॥
अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे ।
सस्यमिव मर्त्य: पच्यते सस्यमिवाजायते पुन: ॥६॥
वैश्वानर: प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ।
तस्यैतां शान्ति कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥७॥
आशा प्रतीक्षे संगतं सूनृतां च इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान् ।
एतद् वृड्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥८॥

हे प्रभु !
वाजश्रवा ऋषि ने क्यों दिया
यम को पुत्र नचिकेता
क्या है मर्म बतलाएँ
पुत्रों की होती तीन श्रेणी
श्रेष्ठ माध्यम अधम
अधम तो नही था नचिकेता समझाएँ
किये जो भी आचरण ऋषि पूर्वजों ने
बताएँ हमें
श्रेष्ठ पुत्रों के धर्म को आप समझाएँ हमें
अन्न सम वृत्ति प्राणों की होती
जन्म मरण तो विधान है
जब नचिकेता पहुँचे यमपुरी

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

क्यों उनको रोका गया दिन तीन
वे थे विप्र रूप अतिथि
भानु-पुत्र ने किया आतिथ्य
धर्मराज ने पाद-प्रक्षालन
नम्र हो सूत-आदित्य |
कैसा आतिथ्य
भोजन बिन रहे जहाँ विप्र
दानपुण्य सब कर्मों का फल हुआ छिप्र
श्री हीन् होते वे,
जिनके घर रहते भूखे आगत
जो न कर सके उचित स्वागत |

<u>श्लोक=१//१//९-११</u>
तिस्त्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्य : ।
नमस्ते अस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मे अस्तु तस्मात् प्रति त्रीन् बरान् वृणीष्व ॥९॥
शान्तसकल्प: सुमना यथा स्याद्वीतमन्युगौर्तमों माभि मृत्यो ।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥१०॥
यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्ट : ।
सुखं रात्री: शयिता वीतमन्युस्त्वां दद्दशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥११॥

हे नाथ !
यंम ने क्यों क्षमा माँगी विप्र बालक से कह
आप अतिथि मेरे, आप प्रणम्य
क्षमा करें
कष्ट दिया आपको रोक दिन तीन
तीन वर लीजिये निसंकोच
करें मुझे कष्टविहीन |
नचिकेता ने फिर प्रभु कैसे माँगे वर तीन
प्रथम वर आप दीजिये,
लौट यहाँ से जाऊँ जब,
पिता मेरे क्रोध-रहित, शांतचित्त, मुदित
आनंदित हो मुझसे
स्नेह से करें स्वीकार,
दे प्रभु यह अधिकार |
स्वीकार कर आपने यह
वर प्रथम
हर्षित मुझे किया
आपने क्रोद्ध उद्वेग शांत किया

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

पितृ मेरे अब रह सकेंगे चैन से
न अतिरेक से, किन्तु विवेक से |११|

<u>श्लोक =१//१/१२-१३</u>
स्वर्गे लोक न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शेकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१२॥
स त्वमग्नि स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यों प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम ।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ॥१३॥

हे स्वामी !
स्वर्गलोक सुख की खान
न होते भय से भयभीत,
न डर जरावस्था का,
यह शारीरिक कष्ट विहीन लोक
न यह मृत्यु लोक |
हे मृत्यु देव,
आप अग्नि के ज्ञाता
स्वर्ग अग्नि बिन नही आता
मैं नचिकेता अग्नि एवं आप में
रखता पूर्ण श्रद्धा
वर दूसरा दीजिये
ज्ञान अग्नि का मुझे दीजिये |१३|

<u>श्लोक=१//१/१४-१६</u>
प्र ते ब्रवीमि तदु मे निवोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेत: प्रजानन् ।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥१४॥
लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा ।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्यु:   पुनरेवाह तुष्ट:॥१५॥
तमब्रवीत प्रीयमाणो महात्मा वरं   तवेहाद्य ददामि भूय: ।
तवैव नामा भवितायमग्नि : सृक्ङां चेमामनेकरुपां गृहाण ॥१६॥

हे देव !
उपकार आपने किया,
स्वीकार मेरी याचना द्वितीय वर की
आप कह रहे आप विधिवत विज्ञ
अग्नि विद्या से,
विद्या यह अनंत, अविनाशी
बुद्धि रूपी गुफा में यह मिले |१४|
देव बतलाता हूँ

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

जो आपने सिखलाया मुझे
इतनी ईंटे अग्नि कुंड शुचि को अभीष्ट हैं,
स्वर्ग कारण स्वरुप अग्नि उपदिष्ट है |१५|
हे वत्स !
धर्मराज ने चकित हो कहा
बुद्धि तुम्हारी अप्रतिम
एक वर और देता हूँ
अग्नि विद्या अब से
तुम्हारे नाम से जानी जाएगी
रतनमाल देव सिद्धि को यह विविध रूपा
सिद्धि मानी जाएगी |१६|

श्लोक=१//१/१७-१८
त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्   तरति जन्ममृत्यू ।
ब्रह्मजज्ञ। देवमीड्यं विदित्वा निचार्य्यमां शानितमत्यन्तमेति ॥१७॥
त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् ।
स मृत्यृपाशानृ पुरत: प्रणोद्य शोकातिगो   मोदते स्वर्गलोके ॥१८॥

हे अग्निदेव !
अनुष्ठान तीन बार करते जो आपका,
विधिवत लिखित शास्त्रों में जैसा
तीनो वेदों ,ॠग, साम, यजु का तत्व ज्ञान
दान यज्ञ का विधान
चयनित निष्काम भाव से
जन्म चक्र से मुक्त हो
भ्रान्ति से विमुक्त हो
शान्ति प्रदान करें |
कितनी ईंटों से कुंड निर्माण हो
किस विधि से विद्या प्रमाण हो
मर्म अग्नि विद्या का जानते नचिकेता
अनुष्ठान तीन बार हो
तोड़ कर जन्म मृत्यु पाश
स्वर्ग सुख हो मेरे पास |

श्लोक =१//१//१९-२०
एष तेऽग्निर्नचिकेत: स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण ।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृष्णीष्व॥१९॥
येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीय : ॥२०॥

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

हे देव !
आपने नचिकेता नाम से अग्नि विद्या को
दिया नया नाम है
अग्नि विद्या स्वर्ग दायिनी विख्यात है
तीसरा वर माँगने को अब नचिकेता तत्पर है,
वर तीसरा देता प्रज्ञा बुद्धि अवसर है |
नचिकेता माँग रहा
नाथ! वर तृतीय दीजिये मुझे
आत्म तत्व के ज्ञान से सींचिये मुझे
उपरांत मृत्यु के आत्मा रहती कि नही?
अस्तित्व उसका होता कि नही?
अब तक संशय यह भारी
दूर आप कीजिये
मर्म इसका धर्मराज आप पूर्ण कीजिये |

<u>श्लोक=१//१/२१-२२</u>
देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुवेज्ञेयमणुरेष धर्म : ।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥२१॥
देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यों यत्र सुविज्ञेममात्थ ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यों न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥२२॥

हे नाथ यमदेव !
अति सूक्ष्म आत्म तत्व का ज्ञान दीजिये,
अतिशय न्यून ज्ञात है जो
सहज ग्राह्य देवों को
कैसे कह दिया
आपने माँगूं दूसरा अन्य वर,
आप तो प्रतिज्ञा बद्ध हैं,
देवों को भी दुर्लभ मर्म आप दीजिये |
देवों को भी अज्ञेय विषय गूढ़ है
आप सा ज्ञाता गुरु हो
तो सब ज्ञेय है
अतः मैं मूढ़ता में
कोई अन्य वर ले सकता नही
गूढता को जान
ज्ञान मुझे दीजिये,
नमन मेरा स्वीकार कीजिये |

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

<u>श्लोक=१//१//२३-२५</u>
शतायुष: पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान् ।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥२३॥
एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च ।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि॥२४॥
ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामांश्छन्दत: प्रार्थयस्व।
इमा रामा : सरथा : सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यै:।
आभिर्मत्प्रत्ताभि : परिचारयस्व् नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षी ॥२५॥

हे धर्मराज !
नचिकेता को क्यों बहला रहे
सूत, पौत्र, गौवें, स्वर्ण, हाथी, अश्व या साम्राज्य का
प्रलोभन दे मना रहे,
आत्मतत्व का मर्म है दुर्लभ
इस विषय से दूर क्यों जा रहे |
नाथ न चाहिए
धन राज्य वैभव दीर्घ जीवन
यह सब आत्म विषयक सम हो नही सकते
न चाह युगों तक जीने की
इच्छित भोगो को पीने की |
दीजिये ज्ञान मृत्युपरांत आत्मा के मर्म का
क्या करूँगा सुन्दर रमणी के सम्भोग का ,
भूलोक के दुर्लभ भोग का
विश्व के वैभव
सहज उपलब्ध सेवा
निरर्थक हैं सभी |

<u>श्लोक=१//१//२६-२७</u>
श्वो भावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेज: ।
अपि सर्वम् जीवितमल्पेमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥२६॥
न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत् त्वा ।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीय: स एव॥२७॥

हे कृपानिधि !
पुत्र पौत्र गौ अश्व गज साम्राज्य
सब के सब हैं नैराश्य
सब ही एक दिन होने समाप्त हैं
प्राण आयु अप्सरा रथ विपुल राज्य भी
इस क्षणभंगुर संसार में

सब कुछ चुकेंगे यहीं
क्यों मैं मोहित होऊँ
इस असार में ?
धन अर्थ
सब व्यर्थ
न करते तृप्त
प्रलोभन समुच्चय
आकर्षित न करें मुझे
धन आयु यथेष्ट है
आपकी कृपा श्रेष्ठ है
वर तीसरा आत्म ज्ञान का दीजिये |

<u>श्लोक=१//१//२८-२९</u>
अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन् मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥
यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥२९॥

हे यमराज !
आत्मज्ञान ही धर्म मर्म गूढ़ है,
सुविज्ञ मनुज जानते
प्राण नश्वर है,
नारी सौन्दर्य सुख, धन, सब भोग
जीवन के त्रास है
आप तो मृत्यु विहीन हो
नाथ गूढ़ ज्ञान दीजिये,
बताइये
मरणोपरांत आत्मा का अस्तित्व क्या है
आत्म ज्ञान का सत्य क्या है,
न दें प्रलोभन मुझे
बस आत्म ज्ञान ही दीजिये |

<u>|| कठोपनिषद प्रथम अध्याय द्वितीय वल्ली ||</u>

<u>श्लोक=१//२//१-२</u>
अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥१॥
श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥२॥

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

हे देव !
प्रेम साधना भिन्न होती,
कल्याण साधना से,
भिन्न-भिन्न फल देती दोनों अवस्थाएं
कल्याणकारी अलौकिक सुख
संसार से परे श्रेयस्कर होता,
प्रेम सांसारिक दुःख का
अति भावकर होता |
धीर ज्ञानी होते जो
चिंतन करते प्रिय एवं श्रेयस्कर दोनों का
साधना करते श्रेयस्कर का समझ अंतर दोनों का
अज्ञ अल्पज्ञ मनुज रहते योगक्षेम में लीन
तत्व ज्ञानी विवेकी रहते प्रभु में तल्लीन |

श्लोक=१//२//३-४
स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्त्राक्षीः।
नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥३॥
दूरमेते विपरीत विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सितं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥४॥

हे नाथ !
आपकी कृपा से
लौकिक अलौकिक दिव्य प्रलोभन
न कर सके विचलित मुझे
आपने मुझे तत्व का अधिकारी बताया
धन लोभ से विमुक्त
निस्पृह शुचितामय भक्त नियुक्त करो मुझे |
प्रभु मुझे विद्या का अभिलाषी जान
मिमंषित तितिक्षामय विवेक आत्मज्ञान प्रदान करें
विद्या एवं अविद्या
दो साधन प्रमुख
अविद्या आती भोगों से
विद्या प्रेरित ज्ञान से
नचिकेता को प्रभु
दीजिये ज्ञान |

श्लोक =१//२//५-६

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

अविद्यायामन्तरे वर्तमानः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः|
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥५॥
न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्|
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ।। ६।।

हे स्वामी !
अविद्या के अंतर को जान
वर्तमान में स्वयं को धीर मान
पंडित कहे जो साभिमान
मूढ़ भोगी होते जो
रहते विभिन्न योनियों में वे
ज्यूँ अंधे को मार्ग अँधा कहता
वह बहु योनियों में भटकता रहता
लक्ष्य कदापि नही मिलता |
मैं नही चाहता
पुनः पुनः जन्म मरण चक्र में फँसूं
उनकी तरह; जो
भौतिक प्रमादी मूढ़ हैं
धन के मद में गूढ़ हैं
चिंता नही जिन्हें परलोक की
क्षणिक सुख ही शाश्वत जिनको
भ्रमित रहते
करते आश्वस्त उनको |

<u>श्लोक=१//२//७-८</u>
श्रवणायापि बहुरभिर्यो न लक्ष्यः श्रृण्वन्तोपि बहवो यं न विद्युः|
आश्चर्यो वक्तो कुशलोस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।। ७ ।।
न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥ ८ ॥

हे देव !
कष्ट हारी है होता
आत्म-तत्व का श्रवण मात्र,
अधिकांश तो नही सुयोग पात्र,
कदाचित सुन भी लें
ग्रहण नही कर पाते,
दुर्लभ है मनुज जो
श्रवन भी करे ग्रहण भी करे,
है आत्म-तत्व ज्ञान

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

परम अनुष्ठान |
आत्म-तत्व अति सूक्ष्म
कहें तो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म
यह तर्क कुतर्क से दूर
ज्ञानियों को उपलब्ध है
जब तक प्रकृति है
आत्म-तत्व का ज्ञान
ज्ञानी को मिलता
अज्ञानी तो बिलखता ||

श्लोक=१//२//९-१०
नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥
जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत् ।
ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निः अनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥ १० ॥

हे देव !
मुझ नचिकेता को आपने
मुदित किया बतला प्रज्ञ
प्रभु कृपा से तर्कानुभूति भी मुझे दी
हे नाथ!
अडिग श्रद्धा मेरी
प्रलोभनों से परे अतः आत्म-ज्ञान करें |
कर्म फल भोग सब हैं अनित्य
नित्य है असंभव
तथ्य यह सत्य की सत्य है अचिन्त्य,
अग्नि का चयन किया निहस्प्रह वृति से
ब्रह्म मिलते मात्र निरासक्त प्रवृति से ||

श्लोक=१//२//११-१२
कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम् ।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥ ११ ॥
तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ १२ ॥

हे नाचिकेते !
तुम विरक्त
विश्व के वैभव से, धन सुख सम्पदा से

वेदोचित सुख वर्णित वृहद है
शुचिता, त्याग, विरक्ति
आवश्यक दुर्लभ है |
परम पिता सर्व व्यापी हैं
बसते हृदय मध्य
योगमाया के आवरण से करते भ्रमित
धीर साधक सतत चिन्तक
इस गहन अगोचर सत्ता को जानते,
हर्ष शोक से अपने को उबारते ||

श्लोक=१//२//१३-१४
एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीयँ हि लब्ध्वा विवृतँ सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥ १३ ॥
अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मा- दन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥

हे देव !
आपने मुझे अधिकारी माना
मैं आभारी हूँ,
अध्यात्म के इस उपदेश का श्रवन कर
करूँगा ग्रहण अवश्य ही,
आदरणीय आत्म-तत्व के महती ज्ञान का
तत्वमय चिंतन करूँ ,
आनंद का ज्ञान करूँ प्राप्त
आदरणीय ब्रह्म ज्ञान
मुझमें हो व्याप्त |
ब्रह्म कारण है
ब्रह्म भिन्न अतीत है
ब्रह्म वर्तमान भूत-भविष्य अहम है
ब्रह्म धर्म अधर्म से परे
ब्रह्म परम पुनीत है ||

श्लोक =१//२//१५-१७
सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदँ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ १५ ॥
एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६ ॥
एतदालम्बनँ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

हे धर्मराज !
परम प्रणव ॐ उद्धारक
परम तत्व यह
सर्व कष्ट संहारक,
ॐ सार तत्व समस्त वेदों का
ॐ ज्ञान शब्द ताप साधन लक्ष्य का
ॐ ब्रह्मचारी का प्रणेता कठिन व्रत साध का |
ॐ अक्षय ब्रह्म स्वरुप बताया आपने
परम पुरुषोत्तम नारायण साक्षात् कराया आपने
अन हीं ओमकार हैं,
शुद्ध तत्व साधक सुलभ
सब प्रकार हैं |
है आलंबन ओमकार
है श्रेष्टतम अत्युतम परम
मात्र अकेला आलंबन कोई और नही
साधन अमोघ है
ॐ का साधक ही
प्रभु को
करता प्राप्त है ||

<u>श्लोक =१//२//१८-२०</u>
न जायते म्रियते वा विपश्चिन् नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणोन हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १८ ॥
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायँ हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥
अणोरणीयान्महतो महीया- नात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ २० ॥

हे नाथ !
आपने ज्ञान दिया कि
आत्मा जन्म मृत्यु से विहीन
कार्य एवं कारण से स्वाधीन
क्षय एवं वृद्धि से ऊपर होती आत्मा,
देह है नाशवान
शाश्वत सत्य यही तू जान
सनातन मूल देह, पुरातन आत्मा |
तथ्य यह है सत्य
कोई न मरता न कोई मारता

सुरेश चौधरी 'इंदु'

नित्य चेतन आत्मा है असंबंधित
जड़ देह की प्राचीर से |
जीवात्मा के अंतस में रहते नारायण
अति सूक्ष्म और उस से भी सूक्ष्म
कण कण में विराजते प्रभु आप का दर्शन पाऊँ,
महामहिम! आप की कृपा से गंतव्य सदा ध्याऊँ ||

श्लोक= १//२//२१-२३
आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ २१ ॥
अशरीरँ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २२ ॥
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥ २३ ॥

हे धर्मराज !
सर्वत्र सर्वरूप व्यापक
दिव्य परम प्रभु के रूपक
गतिमान आसीन हैं आप
दूर है पर पास हैं आप
दिव्य तत्व की दिव्यता का भान कराएँ |
मरणांत देह है क्षणिक क्षयशील
मोह हर्ष शोक, विकार हैं मन के
बुद्धिमान धीर विवेकी बन
शोक का किंचित भी भय न हो
ब्रह्म ज्ञान हो |
न श्रवण से,
न प्रवचन से,
परम ब्रह्म उपलब्ध उन्हें
न तर्क से, न गर्व से
स्वीकार करता जो उन्हें
विरहाकुल भक्ति ही मिलती उन्हें ||

श्लोक=१//२//२४-२५
नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ २४ ॥
यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ २५ ॥

सुरेश चौधरी 'इंदु'

हे नाथ !
बुद्धि मन इन्द्रियों को करूँ बस में
ज्ञान का न हो अभिमान
मन शांत हो, आचरण हो शुद्ध
मैं न तो हूँ प्रबुद्ध फिर भी
कृपा करते रहिये,
अंत समय आएगा तो
मृत्यु भोज बना ही लेगी
सब गर्वानुभूति रह जाएगी कि कालजयी हूँ
मृत्यु संहारक प्रभु
आप को जान सका न कोई
उत्पन्न न रहा सृष्टि में कोई ||

<u>प्रथम अध्याय तृतीय वल्ली</u>

<u>श्लोक=१//३//१ -२</u>
ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ १ ॥
यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत् परम् ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतँ शकेमहि ॥ २ ॥

हे देव !
सत्य कहा आपने
सु कृत का फल दिलाता मनुज रूप
मनुज ही ज्ञानशील ब्रह्म का स्वरूप
ऊष्मा एवं छाया ब्रह्म ज्ञान सदृश
भिन्न व अभिन्न दोनों में
पंचाग्नि गृहस्थ सी है |
यज्ञ आदि शुभ कार्य होते रहें सदा,
सामर्थ्य ऐसी दे सर्वदा
भवसागर को करूँ पार
भयहीन रहूँ
ब्रह्म से हो सानिध्य
यही प्रार्थना|

<u>श्लोक=१//३//३-४</u>
आत्मानँ रथितं विद्धि शरीरँ रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३ ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँ स्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

हे स्वामी !
यह देह तो रथ है,
आत्मा रथी,
बुद्धि रूपी सारथी इस रथ को
मन के नियंत्रण से हाँकता है |
पञ्च इन्द्रियों को ज्ञानियों ने
पञ्च अश्व की भाँति बताया,
विषय के इस जग में विचारने को
अति प्रलोभनीय मार्ग बताया,
चंचल मन के वशीभूत इन्द्रियों से युक्त
भोग में डुबाना
यह ही रह गया.
हे परमात्मा! आपको कदापि न भूलूँ |

श्लोक=१//३//५-६
यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥ ५ ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ ६ ॥

हे स्वामी !
चंचल मन की वृतियों से
कदापि हो नही सकता विवेकी
विज्ञान रहित व्यक्ति
पा सकता नही ब्रह्म
दुष्ट अश्वों की भाँति
अनियंत्रित इन्द्रियों वाला
लक्ष्यहीन भटकता है,
जिनका सारथि अश्वों को
नियंत्रण में नही रख सकता |
मेरी इन्द्रियां मेरे वश में हों,
मैं मन से प्रसन्न रहूँ,
मानसिक भौतिक लौकिक लक्ष्य
निष्पादित हों,
कुशल सारथी की तरह
इन्द्रियों को वश में रख

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

विवेक अक्षुण्ण रखूँ
दिव्य सम्पदा को प्राप्त करूँ |

<u>श्लोक=१//३//७-९</u>
यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ७ ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ८ ॥
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९ ॥

हे जगत्पति !
विषय रूपी विष का पान करने वाले
असंयमित मन के विकारी,
कदापि सतगुण से समृद्ध हो नही सकते,
कदापि परम पद को प्राप्त नही कर सकते,
कदापि जन्म मृत्यु चक्र से निकल नही सकते |
परन्तु हे नाथ!
मुझे सदा संयमी, विवेकी
ऋत भाव से युक्त बनाओ,
मरण जनम से मुक्त कराओ,
निष्काम भाव से कर्म करूँ,
मृत्यु भी विशेष हो
प्रभु कृपा कभी न शेष हो |
बुद्धि रूपी सारथी के नियंत्रण में हो मन
विवेक स्थिर हो
पार संसार हो
आप करुणागार हो ||

<u>श्लोक=१//३//१०-१२</u>
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ १० ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥
एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥

हे नाथ !
इन्द्रियों से अधिक विषय अर्थ,

अर्थ से अधिक है बलवान मन,
मन से परम होती बुद्धि,
बुद्धि से प्रबल है आत्मा
आत्म बल प्राप्त हो मुझे परमात्मन्!
प्रभु!
जीवात्मा अव्यक्त हो आत्म शक्ति के अधीन होती
अव्यक्त तो अधीन परम प्रभु आपके,
सृष्टि में किंचित भी
साम्यता आपके दिव्य गुणों से परे होती |
माया से विभूषित प्रभु रहते आप
अगोचर हैं फिर भी आप
स्वयं को आवृत करिए
मुझ को सुक्ष्तम ज्ञान दीजिये
दया की दृष्टी प्रदान कीजिये
आपके दर्शन पा सकूँ
ऐसा विश्व में समदृष्टि अभिज्ञान दीजिये ||

श्लोक=१//३//१३-१५
यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥ १३ ॥
उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ १४ ॥
अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

हे प्रभु !
मुझे स्थिरप्रज्ञ बनाओ,
मन को शुचि ज्ञान से
शुचि ज्ञान को आत्मा से
आत्मा को आप से
निरुद्ध विलीन कर
आपको पाना है|
ज्ञानियों के ज्ञान से लाभान्वित हो जाऊँ
दुष्कर ब्रह्म ज्ञान
ब्रह्म विधान
मुझे प्राप्त हो
कृपा आपकी हो
तीक्ष्ण छुरे की धार सा
ज्ञानियों का ज्ञान प्राप्त हो |

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

रूप,रस,स्पर्श,गंध,शब्द
असीम आद्यंत अद्भुत नित्य रहें
ब्रह्म जीवात्मा से श्रेष्ठ हैं
सत्य ज्ञात हो,
जन्म-मरण चक्र से निजात हो ||

श्लोक=१//३//१६-१७
नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तँ सनातनम् ।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ॥ १६ ॥
य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते ।
तदानन्त्याय कल्पत इति ॥ १७ ॥

हे नाथ !
शुद्ध उपाख्यान जो आपने दिया नचिकेता को,
सनातन सत्य है उक्ति वह
ज्ञानियों द्वारा रक्षित है यह
अग्नि तत्व का श्रवण है यह
महिमा है यह
प्रतिष्ठित ब्रह्म की
ब्रह्म लोक पद मिले |
विद्वत जनों की सभा मध्य
शुद्ध विचार से कहते कथा
परब्रह्म विषय की गूढ़ यथा
प्राप्त करते पद अनंत
अक्षय फल मिलता अंत ||

|| ईति कठोपनिषद प्रथम अध्याय ||

कठोपनिषद द्वितीय अध्याय प्रथम वल्ली

श्लोक =२//१//१-३
पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥
पराचः कामाननुयन्ति बाला स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥
येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते ।
एतद्वै तत् ॥ ३ ॥

सुरेश चौधरी 'इंदु'

हे स्वामी !
इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृति,
वाह्य जग, आत्मा सब यही हैं
यह अदृश्य रचना आपकी ही है,
धीर बनूँ, परम पद प्राप्त करूँ,
इस अनृत जग से विमुख होकर
सत्य की पहचान करूँ |
बाह्य भोगों को चाह कर
मैं मूर्ख नही बनना चाहता कदापि,
मृत्यु बंधन में पड़ कर न तरु
बुद्धि विवेक प्राप्त हो
अमर पद प्राप्त हो,
परमार्थ में मन लगे,
विशुद्ध तत्व का भान हो |
शब्द रस स्पर्श गंध की ये इन्द्रियाँ
नचिकेता को दिया ज्ञान जो
हैं ज्ञानेन्द्रियाँ
कुछ शेष नही क्षण भंगुर संसार में
क्षय होता यह क्षणिक संसार है ||

<u>श्लोक=२//१//४-६</u>
स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ ४ ॥
य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ।
एतद्वै तत् ॥ ५ ॥
यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत ।
एतद्वै तत् ॥ ६ ॥

हे जगतपति !
स्वप्न के अंत में,
जागृतावस्था के अंत में,
ज्ञान अनुभव की चेतना
आपकी कृपा से हो प्राप्त,
दुःख, शोक, किंचित मात्र भी न हो,
आप ही आप सर्व व्याप्त हों |
कर्म करता रहूँ,

वर्तमान, भूत, भविष्य,
आपके द्वारा संचालित
जीवन प्रदाता का आभास हो,
निंदा,घृणा,द्वेष शून्य हो ब्रह्म
तत्व ज्ञान दीजिये |
हिरण्यगर्भ रूप में प्रगट थे आप
जल से भी पूर्व व्याप्त थे आप,
विशुद्ध सर्व अंतर्यामी प्रभु
आप ह्रदय रूपी कन्दरा में विराजें ||

श्लोक=२//१//७-९
या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत ।
एतद्वै तत् ॥ ७ ॥
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवे दिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ।
एतद्वै तत् ॥ ८ ॥
यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।
तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ।
एतद्वै तत् ॥ ९ ॥

हे स्वामी !
देव स्वरूप, अदिति स्वरुप,
इन प्राणों में बसने वाले स्वामी,
ह्रदय रूपी गुफा में रहने वाले स्वामी,
यह आद्यांत अद्भुत शक्ति
आपकी ही प्रदत्त है |
गर्भिणी के गर्भ में स्थित बालक
अदृश्य है परन्तु सत्य है,
दो काष्ठ में छिपी अग्नि सत्य है
हवन सामग्री से जो याज्ञिक नित्य वंदना करें
वह ही आपको प्रसन्न हैं |
सब देवता वहीँ से प्रकट एवं लीन होते
जहाँ से सूर्य उदित एवं अस्त होते,
यह विधान सत्य है,
इसके भेद आगामी हैं,
अतः आप ही ब्रह्म हैं |

श्लोक=२//१//१०-१२

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥
मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ ११ ॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ।
एतद्वै तत् ॥ १२ ॥

हे परमेश्वर !
इस लोक में उस लोक में
सर्वत्र ब्रह्म आप ही हो सही,
अणिमा आपके बिना है नही कहीं,
मोहवश न अनेक की भावना
कामना से त्रस्त होऊँ
जन्म चक्र से न ग्रसित होऊँ
शुद्ध पवित्र मन से गहन ब्रह्म हो प्राप्त
जीवात्मा से पूर्ण हैं ब्रह्म यह ज्ञात
भिन्न नही जन्म मृत्यु चक्र
न फँस पाऊँ इसमें कृपा रहे अग्र
आप तो सर्व व्यापी हैं
हृदय में स्थित हो विशेष
हे त्रिकाल दर्शी आप ही ब्रह्म हैं
भिन्न न हो कर भी अभिन्न हैं ||

श्लोक=२//१//१३-१५
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः ।
एतद्वै तत् ॥ १३ ॥
यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥ १४ ॥
यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥ १५ ॥

हे नाथ !
अंगुष्ठ मात्र पुरुष
धूम्र हीन ज्योति के विगत आगत
और है नियंत्रक,
त्रिकाल सीमा से परे
ब्रह्म भी आप हैं

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

उच्च शिखर पर पावस बूँदें
बरस ज्यूँ गिरती दुर्ग के चहुँ ओर,
पृथक दिख कर भी एक ही जल है,
धर्म भी दीखता पृथक
प्रभु पृथक कदापि नही |
नचिकेता को जो बताया
बताये हमें
विश्व की सृष्टि ईश की ही है
संसार पर कृपा आपकी है
शुद्ध जल में मिल जल होता शुद्ध
ब्रह्म तत्व में मिल होया ब्रह्म सत्य ||

<u>द्वितीय अध्याय द्वितीय वल्ली</u>

<u>श्लोक=२//२//१-३</u>
पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते ।
एतद्वै तत् ॥ १ ॥
हँसः शुचिषद्वसुरान्तरिक्षसद्होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसद् अब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ २ ॥
ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ३ ॥

हे नाथ !
यह शरीर एक नगर की भाँति बताया आपने,
ग्यारह द्वारों से सज्जित,
जीवात्मा इसे पूजते,
शोक का महाकारण है यही जग
बंधन मुक्त कर
ब्रह्म से आसक्त कर |
इस देह रूपी गृह में अतिथि रूप
विराजित वसु अंतरिक्ष अनूप है,
परब्रह्म हंस सा पवित्र शुद्ध इसका रूप है |
व्योम स्थित शुद्ध प्रतिष्ठित अग्नि रूप यज्ञ
भू, गिरि, नदी, अन्न, औषधि सब
समाविष्ट हैं इसमें |
अपान वायु को अधोगति दो,
प्राणों को उर्ध्व गति दो,
हृदय में स्थित होकर आपने,

दिव्य प्रभु आपका वंदन करूँ
आपके गुणों को नमन करूँ ||

<u>श्लोक=२//२//४-६</u>
अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते ।
एतद्वै तत् ॥ ४ ॥
न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥ ५ ॥
हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥ ६ ॥

हे स्वामी !
शरीर अस्थिर है,
प्राण गमन शील हैं,
मृत्यु चक्र स्थाई है,
प्राण के जाने के बाद शरीर में रहता है क्या?
ब्रह्म अंश आपका |
न प्राण से, न अपान से,
मृत्यु पर विजय पाए कोई,
जीवात्मा में तो आप ही ब्रह्म रूप हैं,
प्राण अपान दोनों आश्रित आप पर,
पृथक अस्तित्व नही कोई |
अब प्रभु ज्ञान मुझको दीजिये
जो नचिकेता को दिया धर्मराज ने
जीवात्मा का होता क्या?
मर कर जाती कहाँ?
परब्रह्म का स्वरुप क्या?
बतलाएँ प्रभु ||

<u>श्लोक = २//२// ७-९</u>
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७ ॥
य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ।
एतद्वै तत् ॥ ८ ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ९ ॥

हे नाथ !
प्रत्येक जीव का जन्म
कर्म एवं संस्कार के अनुसार होता है,
मनुज हो या कीट, पशु इत्यादि,
यही ब्रह्म तत्व का ज्ञान है |
आप विशुद्ध तत्व आप परम ब्रह्म अमृत हैं,
समस्त ब्रह्माण्ड आपमें समाहित,
आप ही शाश्वत ऋत हैं,
अतिक्रमण विहीन विधान आपका,
आप कर्मफल दाता,
प्रलायोपरांत जागते
होते वही विज्ञ |
प्रभु ज्यूँ अग्नि होती एक
रूप उसके अनेक,
सब प्राणियों में संभावनाओं से व्याप्त आप,
आधार अनुरूप ज्ञात आप,
ब्रह्म एक है विविधता लिए
विवेक है अनुरूपता लिए
ज्ञान हमको दीजिये ||

<u>श्लोक=२//२//१०-११-१२</u>
वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥
सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११ ॥
एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

हे जग स्वामी !
पवन एक है,
परन्तु गति द्वारा उत्पन्न
शक्ति अनेक है,
आप भी ब्रह्म स्वरुप एक हैं,
आप अनेकों वेश में समस्त प्राणियों को

नियंत्रित करते हैं |
सब लोकों के नेत्र स्वरुप,
भास्कर का तेज़ भी
जीव के गुण दोष से रहित
एक सा प्रभाव करता है,
कर्म दोष के अनुकूल
रह कर भी,
पृथक है निर्लिप्त है,
अपने दिव्य पुंज से
सम्पूर्ण विश्व आलोकित है |
आप एक हो फिर भी
अनेकों वेश में रहते,
अंतस में स्थित आत्मा के अखिलेश हो,
ज्ञान आत्म का दीजिये
ज्ञानी मुझे कीजिये,
यह शाश्वत सनातन ज्ञान मुझे दीजिये ||

श्लोक=२//२//१३-१५
नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १३ ॥
तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥ १४ ॥
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विदयुतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १५ ॥

हे ईश !
नित्यों में नित्य आप,
चेतन में चेतन आप,
आत्मा में आत्मा आप,
धीर, ज्ञानी देखते सर्वदा
सनातन शांति आपमें,
कर्मों के विधान का
विधाता परम स्रोत हो |
अलौकिक आनंद, परम सुख सर्वोपरि
परब्रहम ज्ञान से,
वचन वाणी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष
मात्र अनुभव ध्यान से,
अतिशय गूढ़ ज्ञान प्राप्त हो , धन्य हों, |
न तारागण न भानुप्रकाश, न शशि प्रभा

अग्नि आलोकित है सदा सर्वदा
विराजित सर्वत्र यह
पृथक और निर्लिप्त है
अणिमा ब्रह्माण्ड की दिव्य ज्योत प्रदीप्त है,
प्रभु यूँ ही उजास रहे ||

<u>द्वितीय अध्याय तृतीय वल्ली</u>

<u>श्लोक =२//३//१-३</u>
ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ।
एतद्वै तत् ॥ १ ॥
यदिदं किं च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २ ॥
भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३ ॥

हे प्रभु !
उर्ध्व मूल वृक्ष की शाखा सम सनातन काल से,
ब्रह्माण्ड है ब्रह्म मूल विशाल से
लोक सब आश्रित हैं
विशुद्ध अमृत से ब्रह्म तत्व के
मुझे भी कर आसीन|
इस चराचर जगत के स्वामी आप,
सर्व प्राण कृपालु आप
ब्रह्म के भय से न डरें
वरण ब्रह्म को ग्रहण करें
तत्वज्ञ हम बनें |
आपके भय से भय स्वरूप होती तप्त अग्नि
आपके भय से ही तपता सूर्य है
आपके ही भय से धरा ध्वनित है
भय आपका प्रज्वलित है
इंद्र वायु मृत्यु देव भी भयभीत हैं
इसी से आवृत सृष्टि नियमित है ||

<u>श्लोक=२//३//४-६</u>
इह चेदशकद्बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके ।
यथाऽप्सु परीव दद्दशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥
इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥ ६ ॥

हे नाथ !
मानव के विस्तार से पूर्व,
विविध योनी लोक में
कल्पों तक आबद्ध
यह शरीर व्यापक सिद्ध है |
ज्यूँ स्वप्न में, ज्यूँ पितृलोक में,
ज्यूँ दर्पण में उभरती आकृति,
ब्रह्म अंतःकरण में स्थित है,
धुप छाया की तरह परमात्मा दृष्टिगत है
दिव्य दृश्य यह भव्य है
विविध रूपों में इन्द्रियों की सत्ता पृथक है
आत्मा का स्वरुप विलिक्षण है
उदयमान लय की प्रवृति पृथक है
शुचि, नित्य, चेतन, एक रस
अपरिवर्तित करो प्रभु ||

<u>श्लोक=२//३//७-९</u>
इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥ ७ ॥
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥
न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ९ ॥

हे प्रभु !
सब ज्ञानियों से जाना,
मन इन्द्रियों से है श्रेष्ठ
बुद्धि मन से श्रेष्ठ,
बुद्धि से श्रेष्ठ है आत्मा,
जीवात्मा सर्वश्रेष्ठ है,
जीवात्मा से श्रेष्ठ प्रकृति का जीवांश है,
अवयव शक्ति है, पूर्वांश है |
आप निराकार अव्यक्त दिव्य व्यापक हो
बंधन मुक्त जीव को दिव्य कैसे कहें,

आनंद रूपी ब्रह्म अमृत है ईश आप,
मूढ़ मति को अन्तः समाहित करो प्रभो |
नैनो से प्रत्यक्ष देख कर भी
ब्रह्म कदापि दृश्य नही,
जबकि अनुपम अगोचर ब्रह्म
नित सर्वत्र व्यापी है
सतत चिंतन हृदयंगम, निर्मल बुद्धि योग है,
मिल मुझे आप छुड़ाए जन्म मृत्यु के भोग से ||

<u>श्लोक=२//३//१०-१२</u>
यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ १० ॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥ ११ ॥
नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥ १२ ॥

हे प्रभु !
मेरे ध्यान में आप केन्द्रित हों
मन सहित सभी ज्ञानेन्द्रियो को स्थिर करूँ,
बुद्धि को आप में लीन करूँ,
समस्त चराचर जगत अदृश्य है
ब्रह्म का दर्शन कराओ |
इन्द्रियों की स्थिर धारणा में
योगमिति स्थित है,
अस्थिर योग तो कभी उदित होता कभी अस्त
सामयिकी योग शुचि गत सिद्ध
साधक बन होऊँ प्रसिद्द |
वाणी मन नेत्र कर्मेन्द्रियों से तो नही
वाह्य साधनों से रचित नही
मन बुद्धि ज्ञानेन्द्रियों से सुलभ
ब्रह्म मुझे हो प्राप्त,
जिज्ञासु साधक हूँ
निश्चय हो आप सर्व व्याप्त ||

<u>श्लोक=२//३//१३-१५</u>
अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥ १३ ॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १४ ॥
यथा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम् ॥ १५ ॥

हे नाथ !
अस्तित्व से उपलब्ध
व्यस्त तत्व भाव निश्चय ही
दृढ़ भावना है
तत्व रूप साधना तो अटल है
ब्रह्म प्राप्ति का साधन विकल है
अशेष कामनाएँ साधक के मन की
मरणशील व्यक्ति पर आपकी कृपा,
समूल नाश करती हैं वृत्तियाँ
ब्रह्म रूप आप मुझे प्राप्त हों
जड़ता, मोह, माया, ममता, अज्ञान
सब पतन के मार्ग हैं ठीक से जान
ग्रन्थियाँ काट दे ज्ञान
मुक्त कर मुझ मानव को,
शुद्ध सनातन तत्व का दे उपदेश ||

श्लोक २//३..१६-१८
शतं चैका च हृदयस्य नाड्य- स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥ १६ ॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण ।
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥ १७ ॥
मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् ।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ॥ १८ ॥

हे जगन्नाथ !
देह शत नाड़ियों का बतलाया गया,
सुषुम्ना नाडी हृदय की उनमे से एक,
उर्ध्वगामी अन्तकाल में प्रयाण कराती यह
पुनः स्वकर्म अनुसार जन्म पाते हैं |
ब्रह्म विराजे सब के हृदय में
अंगुष्ठ प्रमाण परिमाण है यह,
तथापि यह स्थित है फिर भी अद्भुत है
प्रत्येक समय रहता व्याप्त

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

आत्मा देह से पृथक
ज्यूँ मुंज सींक से पृथक
व्यंजन यह ज्ञात |
हे प्रभु
यह ज्ञान हमें दीजिये
नचिकेता को धर्मदेव ने दिया
मृत्यु विहीन, विकार विहीन,
विशुद्ध हमें कीजिये
ब्रह्मवेत्ता मर्म ज्ञाता बनूँ
जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त रहूँ
आत्मज्ञान मिले, ब्रह्म लीन रहूँ ||

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति काठकोपनिषदि द्वितीयाध्याये तृतीया वल्ली ॥

प्रश्न उपनिषद

अथर्व वेद

सुरेश चौधरी 'इंदु'

प्रश्न उपनिषद –परिचय

प्रश्न उपनिषद दस प्रमुख उपनिषदों में से एक है, यह अर्थव वेद का वेदांत है, प्रश्न अथार्थ पूछना, इस में छः प्रश्न पूछे गए हैं, इनके उत्तर भी दिए गए हैं, प्रथम एवं अंतिम प्रश्न छोड़कर सब में इनके उप-प्रश्न भी हैं |
छः विद्यार्थी ब्रह्म ज्ञान की जिज्ञासा लिए पिप्लाद मुनि के पास आ कर अपना संशय बताते हैं| सीधे उत्तर देने के बदले ऋषि उन्हें ब्रह्मचर्य अनुसार वैराग लेते हुए एक वर्ष के अनुगमन को कहते हैं|
एक वर्ष उपरांत वे उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं| छः अध्याय में यह रचित उपनिषद हर अध्याय में एक विद्यार्थी के प्रश्नोत्तर का है |

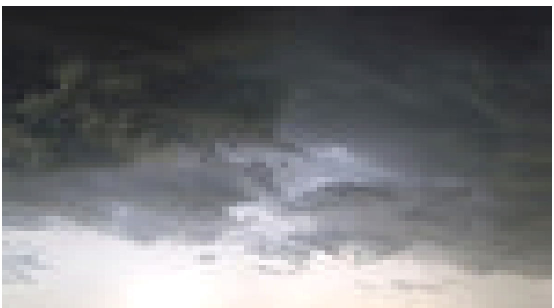

ये छः विद्यार्थी हैं:
सुकेश (भरद्वाज ऋषि के पुत्र }
सत्यकाम { शिबी के पुत्र)
सौर्ययानी (गार्गी के वंशानुगत)
कौसल्य (अश्वल के पुत्र)
भार्गव (भृगु ऋषि के वंशज विदर्भ से)
कबंधी (कात्य के पुत्र)
प्रथम प्रश्न कबन्धी ने ब्रह्माण्ड के मूलभूत कारणों के सन्दर्भ में पूछा| दूसरे प्रश्न में भार्गव ने देह की समस्त इन्द्रियों में प्राण कैसे सर्वोपरि हैं; यह जानना चाहा| तीसरे प्रश्न में कौसल्य ने प्राण की प्रत्युत्पत्ति एवं विनियोग के सन्दर्भ में पूछा| चौथा प्रश्न सौर्ययानी ने सुप्तावस्था में

कल्पनाओं में विचरने की अवस्था के बारे में जानना चाहा| पाँचवे प्रश्न में मुनि ने ॐ के फल एवं ध्यान के बारे में पूछा| छठे प्रश्न में सुकेश ने विश्व के उन महान रचयिता के बारे में जो पूछा, सोलह कलाओं के साथ प्रकट होते हैं | इस भाँति यह उपनिषद सब से अलग सीधे-सहज शब्दों में ब्रह्म ज्ञान देता है |

प्रश्नोपनिषद

शांति पाठ
ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

हे स्वामी !
कानों से मंगल सुनूँ, आँखों से मंगल देखूँ,
आपके पूजन में सर्वदा मंगल कार्य हो,
सुदृढ़ काया हो, आयु दीर्घ हो,
सुदृढ़ अंग हो,
ताकि आपकी आराधना सक्षम हो|

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

हे स्वामी !
इंद्र, पूषा, अनिष्ट, हर्ता एवं गरुड़
सा यश मुझे प्राप्त हो,
आप हमारा कल्याण करें,
प्रत्येक कामना पूर्ण हो,
आपकी परम कृपा से
आपके मार्ग को प्राप्त करूँ |
मन शांत हो, शांत हो, शांत हो ||

प्रथम प्रश्न

मन्त्र १-३
ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौसल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं

ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह
समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥१॥

हे जग स्वामी !
ॐ नाम से आपको स्मरण कर,
भरद्वाज ऋषि के पुत्र सुकेश,
शिबि राज के पुत्र सत्यकाम
गर्ग कुल शिरोमणि सौर्ययानी
विदर्भ के भार्गव
कौसल देश के कौशल्य आश्वलाय
कबन्धी कात्य ऋषि के प्रपौत्र
सर्व वेदों के परायण ऋषि
करते थे जो ब्रह्म शोध
ये छः ऋषि एक साथ पधारे
पिप्लाद ऋषि आश्रम में,
मान कर यह की ऋषि पिप्लाद
ब्रह्म विषय कहेंगे,
समिधा ले हाथों में प्रार्थना की ऋषि की तब,'
मुझे भी यह प्रश्न बताओ प्रभु |

मन्त्र-२
तन् ह स ऋषिरुवच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण
श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छत
यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥२॥

हे नाथ !
सुन जिज्ञाषा ऋषियों की
पिप्लाद मुनि ने किया आग्रह
हे ऋषि गण!
निवास करें इस आश्रम में,
एक वर्ष पश्चात्
आपकी इच्छानुसार
दूँगा उत्तर सब प्रश्नों का क्रमानुसार |

मन्त्र-३
अथ कबन्धी कत्यायन उपेत्य पप्रच्छ ।
भगवन् कुते ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥३॥

हे स्वामी,

आ एक वर्ष पश्चात्
पूछा कबन्धी मुनि ने
ऋषिवर पिप्लाद से,
प्रभु बताएँ कि
यह लोक कहाँ से आया
मुझे भी जिज्ञासा है यही
बताये न आप ||

<u>मन्त्र ४-६</u>
तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत
स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते ।
रयिं च प्रणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥४॥
आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्
सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥५॥
अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति
तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ।
यद्दक्षिणां यत् प्रतीचीं यदुदीचीं
यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत् सर्वं प्रकाशयति
तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ॥६॥

हे नाथ !
पिप्लाद ऋषि बोले तब
सृष्टि के स्वामी तो हैं स्वयं आप,
संकल्प रूपी तप से रची सृष्टि आपने,
रच सृष्टि आपने
प्राण के शक्ति तत्व को किया प्रकट
सब के संग्रह से बहुरूपी सृष्टि बनाई आपने |
हे स्वामी !
आदित्य देव प्राण तत्व हैं,
सूर्य से ही पोषण जीवत्व है,
चन्द्र रच आपने स्थूल तत्व का किया पोषण,
पंचभूत का कर निर्माण
प्राण जीवन शक्ति है
इनसे बना यह जगत यही सत्य है |
हे परमात्मा !
ज्यूँ रात्रि बीतने के पश्चात् सूर्योदय होता है,
ज्यूँ सूर्योदय देख जीवन में नव-संचार होता है,
इसका प्रकाश जैसे जैसे जग में फैलता,
वैसे-वैसे सूर्यदेव प्राण बन जीवन में प्रवेशित होते हैं

प्रभु! मेरे जीवन को भी उजास करें |

<u>मन्त्र ७-९</u>
स एष वैश्वानरो विश्वरुपः प्राणोऽग्निरुदयते ।
तदेतदृचाऽभ्युक्तम् ॥७॥
विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् ।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥८॥
संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च ।
तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते ।
त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेत ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते ।
एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ॥९॥

हे स्वामी !
जीवमात्र के शरीर में जो जठराग्नि रहती है,
प्राण रूप में वह सूर्य स्वरुप ही है|
प्रकाश का केंद्र सूर्य है,
सब का आधार यही,
सर्वज्ञ तपते रहते वे
जो जड़ से रहते
सहस्त्रों की सहायता करते
सहस्त्रों किरणों को प्रभासित कर,
जीवन का प्राण सूर्य,
दे मेरे जीवन में प्रकाश सर्वदा ||
संवत्सर आपका ही रूप,
दो अयन से यह बना,
उत्तरायण, दक्षिणायन,
प्राण एवं रचना का रूप
सकाम भाव से भोग्य वस्तु हेतु तप करूँ मैं
जब चन्द्र की आवृत्ति पहुँचे तो कहलाए दक्षिणायन
पितृ यान मार्ग में जाऊँ मृत्युपरांत
सम्पदा रूप में सफल रहूँ कामना वाले ऋषियों सा, मैं |

<u>मन्त्र १०-१२</u>
अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया
विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते ।
एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणमेतस्मान्न
पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥१०॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ॥११॥
मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः
प्रणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन् ॥१२॥

हे प्रभु !
मैं पूर्ण तप श्रद्धा से नियमपूर्वक आपको पूजूँ,
विद्या प्राप्त कर सूर्य रूप प्रभु आपको जीवन में सात करूँ,
सूर्यलोक जाते हैं उत्तर पथ के साथ
प्राण से प्राण सूर्य को अमृत निर्भय पद रहे
इस तरह साधक बन जन्मंतार पर्यंत
सूर्य रूप प्रभु की प्राप्ति निर्भाय्स्पद रहे ।
पञ्च चरण हैं इस बारह देह सूर्य के
पञ्च ऋतु हैं द्वादश मास की
चरण काया के स्वर्ग उस से खड़ा,
वर्षा उनसे होती,
जग में जीवन भी उस से,
पिता सर्वपालक है,
सूर्य सात चक्र के रथ में सवार
सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के दर्शन करते |
मास हैं आप,
शुक्ल पक्ष प्राण स्वरुप,
कृष्ण पक्ष सम्पदा
शुक्ल है श्रेष्ठ
ऋषि बन शुक्ल पक्ष में यज्ञ करूँ
भोगी बन कृष्ण पक्ष में कर्म करूँ
मुझे श्रेष्ठ कर्म की अनुभूति हो |
मन्त्र= १३-१६
अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः
प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते
ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥१३॥
अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥१४||
तद्ये ह वै तत् प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते ।
तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ष्टितम् ॥१५॥
तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥१६॥

हे प्रभु !
दिवा-रात्रि आपके ही रूप

सुरेश चौधरी 'इंदु'

दिवस यदि प्राण तो रात्रि सम्पदा,
दिवस जीवन शक्ति से प्रद्दिप्त
दिवा में स्त्रीसंभोग प्राण नाशक है,
रात्रि सम्भोग ब्रह्मचर्य के सम है,
दिवस के प्रकाश को प्राप्त करता रहूँ; यही यत्न रहे
विधिना ने जो नियम बनाये उसी प्रकार
ऋतुकाल में भोग हो |
अन्न रूप प्रभु आपसे ही वीर्य जग में आता,
इस वीर्य से ही जीव सृष्टि उत्पन्न होती |
प्रजा आपकी इसी भोग से पुत्र-पुत्री प्राप्त करती,
मैं ब्रह्मचर्य तप का पालन कर
आपके ह्रदय वास करूँ |
असत्य, कपट, छल, तृष्णा मुझमें न रहे,
ब्रह्मलोक प्राप्त करूँ जो अन्य कोई न प्राप्त कर सके ||

|| प्रथम प्रश्न समाप्त ||

द्वितीय प्रश्न

मन्त्र १-३
भार्गव ऋषि ने पूछा
अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ ।
भगवन् कत्येव देवाः प्रचां दिधारयन्ते कतर एतत्
प्रकशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥१॥
तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो
वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ।
ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः ॥२॥
तान् वरिष्ठः प्राण उवाच ।
मा मोहमापद्यथ अहमेवैतत् पञ्चधाऽऽत्मानं
प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवुः ॥३॥

हे स्वामी !
भार्गव ऋषि ने पिप्लाद मुनि से तीन प्रश्नों के उत्तर माँगे,
देव कितने जीव देह धारण करते
प्रकाशित करते
इन सब में यह काया कैसे बनी,
इन सब में श्रेष्ठ कौन ?
ये ही प्रश्न मेरे भी,
प्रभु दें उत्तर आप |

सुरेश चौधरी 'इंदु'

पिप्लाद मुनि ने तब कहा,
पंचभूत से बनी यह देह
विभिन्न तत्वों से बनी यह देह
धारण करते सब
नयन, कर्ण, ज्ञानेन्द्रियाँ,
और उनमे कर्मेन्द्रियाँ
जो चालित सब मन से,
चौदह देवता धारण करते
प्रकाशित इस देह को,
इस विधि देह हम धारण कर
देवधि देव में विवाहित होते |
तब सर्वश्रेष्ठ प्राण धारी ने बतलाया,
मोह माया में पड़ हम धारण करते यह देह
जो की पञ्च प्राणों में बसी,
रक्षा करती काया परन्तु न मानूँ
विश्वास न कर, अभिमान ही करता रहूँ ||

<u>मन्त्र =४-६</u>
सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रामत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रतिष्ठन्ते ।
तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्व एवोत्क्रमन्ते तस्मिंष्च प्रत्ष्ठमाने सर्व एव प्रतिष्टन्त एवम् वाङ्मनष्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ॥४॥
एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुः
एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥५॥
अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
ऋचो यजूँषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥६॥

हे प्रभु !
अभिमान वश प्राण जब देह से होता निष्कासित,
गर्व हर देव के भंग हों
प्राण ही प्रमुख है प्रकाशित,
स्वत्व प्रभुता प्राण की है
रीति अनुसार से
नेत्र, कर्ण, मन, वाणी इन्द्रियाँ भी स्तुति करती प्राण की हैं |
प्राण ही तप्त अग्नि में,
प्राण ही मेघ वायु इंद्र है
पृथ्वी, सम्पदा, देव, भी यह प्राण है,
सत्य असत्य यही बताये,

यही अमृतमयी रूप आपका
स्वस्ति भी यह जग माय प्राण हैं, |
रथ चक्र नाभि के अधीन हैं
प्राण सर्व स्थान प्रतिष्ठित
ऋग, साम, यजु: की पवित्र ऋचाएं
यज्ञ ज्यूँ ब्रह्मण क्षत्रिय करें
प्राण ही उनका आधार है
मुझे भी जीवन सञ्चालन आधार दें ||

<u>मन्त्र ७-१०</u>
प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे ।
तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्रणैः प्रतितिष्ठसि ॥७॥
देवानामसि वह्नितमः पितृणां प्रथमा स्वधा ।
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥८॥
इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता ।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥९॥
यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः ।
आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति ॥१०॥

हे प्राण देव !
ईश्वर स्वरुप देव, आप ही प्रजापति,
गर्भ में भी आप ही विचरते,
मात-पिता के अनुरूप,
आप ही शिशु रूप में जन्मते,
मैं आपकी स्तुति करता हूँ,
आपको भेंट प्रस्तुत करता हूँ,
सब प्राणियों में आप ही आप हैं
आप से सब का अस्तित्व है |
तू देवों का मानक देव अग्नि है,
पितरों को समर्पित होंवे वाली प्रथम समिधा है,
पंचाग्नि है, अथर्वांगिरस ऋषियों का सत्य अनुभव तू ही है,
आप बिन जग मृत्यु है,
आप मुझमे प्राण तत्व बन विराजें |
आप तेजस्वि इंद्र हैं, रक्षक रूद्र हैं
आकाश पर सूर्य भौम आप ही हैं,
शशि, भू, तारक, अंतरिक्ष अनल आप ही हैं,
पोषक बन मेरा कल्याण करें |
मेघ रूप में धरा को सिंचित कर समुचित तृप्त करते,
पर्याप्त अन्न दे प्रजा को संतप्त करते,

मुझे भी आप जीवन निर्वाह का
आनंदमय उपाय बताएँ ||

<u>मन्त्र ११-१३</u>
व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः ॥११॥
या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि ।
या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरू मोत्क्रमीः ॥१२॥
प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम् ।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥१३॥

हे नाथ !
संस्कार से रहित हो कर भी स्वभाव से अति शुद्ध हैं,
सबको आप पवित्र करते हैं,
सर्वश्रेष्ठ ऋषि आप ही हैं,
मैं आपको भोजन दे आपका पोषण करूँ,
आप समस्त जग स्वामी,
आप ही पिता रूप में वास करें |
मन वचन श्रोत्र नेत्र का रूप आप हैं,
इन्द्रियों के अंतःकरण को शांत रखें,
मुझे कल्यानमय रखें,
उत्क्रमण न हो बस यही दया करें |
स्वर्गलोक एवं इस जग में जो भी दीखता
सब आपके अधीन,
प्रभो माँ सदृश रक्षा करें,
कान्ति दें, प्रज्ञा दें, श्री दें, कार्य क्षमता दें ||

<u>|| द्वितीय प्रश्न समाप्त ||</u>

<u>तृतीय प्रश्न</u>

<u>मन्त्र=१-३</u>
<u>आश्वलायन ऋषि पूछ रहे !</u>
अथ हैनं कौशल्यष्चाश्वलायनः पप्रच्छ ।
भगवन् कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर
आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रतिष्ठते
केनोत्क्रमते कथं बह्यमभिधते कथमध्यात्ममिति ॥१॥
तस्मै स होउवाचातिप्रष्चान् पृच्छसि
ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ॥२॥

आत्मन एष प्राणो जायते ।
यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्शरीरे ॥३॥

हे नाथ !
प्रश्न जो पूछा
आश्वलायन ऋषि ने
वही जिज्ञासा मेरी भी
प्राण जन्म लेता कहाँ से,
यह शरीर में कैसे करते प्रवेश,
यह कैसे रहता इस देह में,
यह देह से कैसे निकलता,
फिर जाता कहाँ
यह कैसे मन इन्द्रियों का जग में धारण कर करता भला ,
बतलायें प्रभु |

<u>पिप्लाद ऋषि बतला रहे</u>
प्रश्न अतिउत्तम है,
हे श्रद्धालु प्रेमी!
उत्तर दे रहा मैं
साधक बन सुन जरा |
यह देह तो छाया है, प्राण परमात्मा
परमात्मा ही इसे रचते ,
यह अधीन परमात्मा के,
मृत्यु समय जैसी रहती भावना,
देह में प्राण भी जाते ले वही कामना |

<u>मन्त्र =४-६</u>
यथा सम्रादेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते ।
एतन् ग्रामानोतान् ग्रामानधितिष्टस्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान् पृथक्
पृथगेव सन्निधत्ते पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां
प्राणः स्वयं प्रातिष्टते मध्ये तु समानः ।
एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥४-५॥
हृदि ह्येष आत्मा ।
अत्रैतदेकशतं नाडीनं तासां शतं शतमेकैकस्या
द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु
व्यानश्चरति ॥६॥

हे स्वामी !

ज्यूँ कोई सम्राट निज अधिकारियों को
भिन्न भिन्न स्थान पर दायित्व दे रखता है,
वैसे ही मुख्य प्राण अन्य प्राणों को
विभिन्न स्थल में रख
दायित्व प्रदान करता है |
स्वयं मुख्य प्राण
नेत्र, कर्ण, मुख, नासिका, में रहता विद्यमान
अपान प्राण गुदा में हो उपस्थित
मूत्र, मल निकास करते,
देह मध्य में रह अन्न का पोषण करते,
ये समस्त देह में तत्व का वितरण करते,
यह अन्न रस बन सातों द्वार से शक्ति प्राप्त करता,
नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा ये सात द्वार कहलाते |
जीवात्मा इस ह्रदय में रहता,
ह्रदय नाड़ियों से है,
एक-एक तनी शाखाएँ हैं नाड़ी बनती,
हरेक शाखा नाड़ियों की होती संख्या बहत्तर हज़ार,
प्रत्येक शाखा नाड़ी में व्यान वायु करती प्रसार |

मन्त्र =७-९
अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति
पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥७॥
आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः ।
पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्य
अपानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥८॥
तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः ।
पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पध्यमानैः ॥९॥

हे स्वामी !
सुषुम्ना नाडी ह्रदय से मस्तक तक जाती,
वायु प्रवाहित होती उदान, ऊपर को आती
पुण्य वालों को यह स्वर्ग ले जाती
पापी को पाप योनि से नरक में,
मुझ जीवात्मा को मन इन्द्रियों सह
उदान प्राण अन्य देह में ले जाएँ न |
वाह्य प्राण तो सूर्य सर्वदा,
जहाँ सूर्य प्रकाश
वहाँ नेत्र प्रकाशित
प्राण कृपा करते,

पृथ्वी में शक्ति जो रहती वह
अपान स्थिर रखती,
आकाश भू पर समान रह
व्यान वायु रूप रखती |
उदान सूर्य तेज़ सम,
अग्नि जो काया को न होने दे शीतल
इसकी ऊष्मा देह को रखे सजीव,
अतः जब उदान निष्काषित होती ,
तेजहीन हो देह, शीतल सत्वर हो जाती है |

मन्त्र =१०-१२
यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति ।
प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना तथासङ्कल्पितं लोकं नयति ॥१०॥
य एवं विद्वान् प्राणं वेद न हास्य प्रजा
हीयतेऽमृतो भवति तदेषः श्लोकः ॥११॥
उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा ।
अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति ॥१२॥

हे नाथ !
मृत्यु के समय जो रहता संकल्प,
उदान वायु वही संकल्प ले
मन इन्द्रियों के साथ प्राण में विलीन होती,
मुख्य प्राण उदान को ले आत्मा में
विभिन्न लोकों में ले जाते जीवात्मा को |
प्राण सर्वदा रखा करते,
रहस्यमय होते ये प्राण
अमृत सम जीवन मय रहे
अमर बने ये प्राण |
प्राण की उत्पत्ति
इसका प्रवेश जो जान जाये
वाह्य प्राण को जो जान जाय
वह अमृत मय हो जाय,
मुझे यह ज्ञान मिले, मैं अमृत मय हो जाऊँ ||

|| इति तृतीय प्रश्न ||

चतुर्थः प्रश्नः

<u>मन्त्र =१-२</u>
अथ हैनं सौर्यायणि गार्ग्यः पप्रच्छ ।
भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति
कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति कस्यैतत्
सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्टिता भवन्तीति ॥१॥
तस्मै स होवच । यथ गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं
गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति ।
ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत् सर्वं परे देवे
मनस्येकीभवति तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति
न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते
नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥२॥

हे प्रभु !
गर्ग के वंशज सौर्यवानी ऋषि ने
प्रश्न किया अनुपम,
पिप्लाद मुनि बताएँ आप इस देह में
कौन विद्यमान है, जो सोता है, जागता है?
कौन देखता है, स्वप्न?
कौन निंद्रा में अनुभव करता?
है देव , कौन आश्रित रहता?
सर्वदेव प्रभु आप तो स्थित हैं ही,
फिर कौन आधार है?
मेरी इस जिज्ञाषा को करें शांत |

<u>पिप्लाद मुनि ने प्रेमवश यूँ कहा</u>
किरणें सूर्य उगने पर ही मिलती,
उसी भाँति निंद्रा मनुज की इन्द्रियों में रहती,
परमदेव मन में एक बनें,
इस प्रकार कार्य नही कराते
जीव न तो सोता है, न ही देखता है, न ही सुनता है,
न ही सूँघता है, न स्वाद लेता है,
स्पर्श कर कहता भी नही, न मैथुन ही करता,
न मल-मूत्र त्यागता,
न ही चलता,
जग कहता मनुज तो सोता ,
आप ही कार्य करते सारे
मेरे सब कार्य आप ही पूरे कराओ |

<u>मन्त्र =३-४</u>
प्राणाग्रय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति ।
गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो
यद्गार्हपत्यात् प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥३॥
यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः ।
मनो ह वाव यजमानः । इष्टफलमेवोदानः ।
स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥४॥

हे जगदीश्वर !
मेरे पञ्च प्राण में अग्नि को
मुख्य रूप से देह में जगाओ,
निंद्रा रूप यज्ञ में प्राण अकेला ही जगे
अपान अग्नि है ग्राह्य
व्यान दक्षिण अग्नि है
व्यान से उठ प्राण अग्नि को
मैं अपने यज्ञ में आह्वान करता हूँ,
व्यान से प्राण प्रकट होकर
मेरे प्राण ही कहलायें|
मेरे श्वास श्वास में सर्वदा
यज्ञ की आहुति चलती रहे
इस आहुति से मेरी देह को पोषक तत्व मिलते रहें,
इन तत्वों से सम भाव से सम वायु पहुँचे,
इस से मन को यज्ञ यजमान बनाये
मेरा मन उदान के साथ मिल ह्रदय गुहा में वास करें,
यह मेरी जीवात्मा मन द्वारा निंद्रा सुख की अनुभूति करें,
यही अनुभव प्रत्येक दिन मिलता रहे|

<u>मन्त्र ५-८</u>
अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति ।
यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति
देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः
प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं
च स्च्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पस्यति ॥५॥
स यदा तेजसाऽभिभूतो भवति ।
अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ यदैतस्मिञ्शरीर एतत्सुखं भवति ॥६॥
स यथा सोभ्य वयांसि वसोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते ।
एवं ह वै तत् सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥७॥
पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा
च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा

**च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च ग्राणं
च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक्च स्पर्शयितव्यं
च वाक्च वक्तव्यं च हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं
च पायुश्च विसर्जयितव्यं च यादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं
च बुद्धिश्च बोद्धिव्यं चाहङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं
च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विद्यारयितव्यं च ||८||**

हे नाथ !
मैं जीवात्मा रूप स्व-संस्कारों को स्वप्न में देखता हूँ,
देख कर देखता, सुन कर सुनता हूँ ,
भिन्न भिन्न स्थल में जो विषय अनुभूत होता है,
पुन: पुनः उसे अनुभव करता हूँ ,
भिन्न भिन्न भांति जिसे देखता हूँ,
उसे भली प्रकार सुन,
सत्य असत्य की विवेचना करता हूँ |
मन जो अधीन है, उसमे उदान वायु रहती,
तब मन द्वारा मैं स्वप्न की घटना नही देख सकता
तब मुझे सुषुप्ति सुख का अनुभव हो,
मुझे भोग्य हर स्थिति सुखमय हो |
ज्यूँ गगन में विचरण करते पक्षी,
रात्रि आने पर वृक्ष पर निवास करते हैं,
वैसे ही मैं बंधा तत्व स्वरुप
आपके आश्रय में रहूँ |
पृथ्वी को पृथ्वी की मात्रा, जल को रस की,
तेज को तेज की, वायु व आकाश को स्पर्श व शब्द की तन्मात्रा,
नेत्र को दृश्य पदार्थों की मात्रा,
कर्ण को श्रोत्रिय विषयक मात्रा,
नासिका को सुगंध,
जिव्हा, त्वचा, को स्पर्श स्वाद की तन्मात्रा,
वाणी, शब्द, हाथ की वस्तु रहे,
उपस्थ विषय रहे,
गुदा से मल, उस स्थान से ही जावे,
मन बुद्धि को चित आश्रय रहे,
मुझे परमात्मा सर्वदा तन्मात्राओं के साथ रखे |

मन्त्र ९-११

**एष हि द्रष्ट स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता
मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः ।
स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥९॥**

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै
तदच्छायमशरीरम्लोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य ।
स सर्वज्ञः सर्वो भवति । तदेष श्लोकः ॥१०॥
विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भुतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र
तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ॥११॥

हे प्रभु !
देख कर, सुन कर, स्पर्श कर,
सूँघ कर, चख कर, मनन कर,
मैं सब कार्य करूँ,
ज्ञान रूप जीवात्मा स्वीकार्य रहूँ,
अविनाशी परमात्मा आपके
आश्रय में सर्वदा रहूँ,
आप बिना कोई नहीं
कोई शांति नही
कोई आधार नही |
जिनकी देह की छाया नही,
न जिन का रूप रंग कोई,
उस परमात्मा को प्राप्त करूँ मैं,
साधक बन सर्व ज्ञान मिले,
सर्व रूप मिले,
शुभ अक्षर मन चाहे सम्बन्ध एक ही आवे |
विज्ञान आत्मा सह देवों के
पञ्च भूतों व् पञ्च प्राण के अंतर के,
सब इन्द्रियों के साथ
जिसमे आत्मा वास करती है,
वे मेरे प्राण रूप परमात्मा हैं,
सर्वरूप, सर्व ज्ञाता, ब्रह्म वे एक मात्र हैं,
मेरे ह्रदय में पूर्ण रूपेण वास करें |

|| इति चतुर्थ प्रश्न ||

पंचम प्रश्न

मन्त्र १-३
अथ हैनं सैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ ।
स यो ह वै तभ्दगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत ।
कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति । तस्मै स होवाच ॥१॥

एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः ।
तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥२॥
स यध्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव
संवेदितस्तूर्णमेव जगत्याभिसंपध्यते ।
तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा
ब्रह्मचर्येण श्रद्धयासंपन्नो महिमानमनुभवति ॥३॥

हे जगत पति !
सत्यकाम ने पूछा
मैं जगदीश ॐकार की उपासना करता रहूँ,
जीवन पर्यंत मृत्यु तक मैं उन्हें पूजता रहूँ,
मुझे योग्य लोक में कैसे वास मिले,
मैं शुभ फलों को कैसे प्राप्त करूँ |
हे सत्यकाम! कहा पिप्लाद मुनि ने,
ब्रह्म ही ॐकार रूप हैं,
जगत में जो जिस भाँति करता कामना
ॐकार की होती प्राप्ति उसे वैसी,
विराट जग का भोग सहस्त्रों पाते,
मुझे मेरे प्रभु की इच्छानुसार भोग प्राप्त हो |
आप के आदेशानुसार
ज्ञात हो रहा ॐ की प्रथम मात्रा का भाष्य
पृथ्वी में आसक्त जन ही करते भोग की कामना,
मृत्युपरांत वे मृत्यु लोक में कर्मानुसार भोग भोगते
प्रथम मात्रा ॐ कार की पृथ्वी से है बँधी,
ऋग वेद की ऋचाएँ, ऋचारूप मनुष्य देह से सम्बंधित
इस देह में आपकी कृपा से
नियमों का करूँ पालन,
तप श्रद्धा सदा रहे कर्म में,
श्रेष्ठ मनुज बन
श्रेष्ठ भोग अर्जित करूँ |

मन्त्र =४-५
अथ यदि द्विमात्रेण मनसि संपध्यते
सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम् ।
स सोमलोके विभुतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥४॥
यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्यतेनैवाक्षरेण परं
पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये संपन्नः ।
यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्भुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्भुक्तः स

सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात् परात्परं पुरुशयं पुरुषमीक्षते । तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥५॥

हे प्रभु !
मैं ॐकार की दूसरी मात्रा का ध्यान करता रहूँ,
चंद्रलोक हैं जो स्वर्ग सामान उसे प्राप्त करूँ,
यजुर्वेद है मात्रा दूसरी
मैं यजुर्वेद का पाठ कर सिद्धि प्राप्त करूँ,
भोग भोगने चंद्रलोक से मृत्युलोक आऊँ पर,
उपासना पूर्ण कर पुण्य प्राप्त कर
कर्म अनुसार अन्य योनी प्राप्त करूँ |
ॐकार गुंजन से आपको पूजता रहूँ,
शापित देह छोड़ पाप से मुक्ति पाऊँ
सूर्यलोक प्राप्त कर सामवेद सुनता रहूँ
ब्रह्म लोक में आपके निकट पहुँच जाऊँ
जीव तत्व से श्रेष्ठ अंतर्यामी परमात्मा
इस जग को धारण करने वाले
आपका साक्षात् कार हो
बस यही अभिलाषा |

<u>मन्त्र ६=७</u>
तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ताः अनविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥६॥ ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत् तत् कवयो वेदयन्ते । तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥७॥

हे जगदीश्वर !
ॐकार की तीनो मात्राओं का
अलग अलग वाचन
मन्त्रों के साथ करता रहूँ,
प्रत्युक्त पदार्थ मृत्यु को तेजोमय करे,
हर समय ॐकार उच्चाटन करता रहूँ |
पहली मात्रा की उपासना से
मृत्यु लोक या मनुष्यलोक मिलता,
दुसरी मात्रा का पूजन चंद्रलोक दिलाता,
परन्तु मैं ओमकार का उच्चाटन करूँ मात्र आपकी प्राप्ति हेतु,
तीसरी मात्रा को भजूँ तो
ज्ञान प्राप्त हो एवं ब्रह्मलोक प्राप्त हो

सुरेश चौधरी 'इंदु'

मुझमे विवेक जगे, साधक बन ओमकार जपूँ
आपको प्राप्त कर जन्म-मृत्यु चक्र से निवृत होऊँ ||

<u>|| इति पंचम प्रश्न ||</u>

<u>षष्टम प्रश्न</u>

<u>मन्त्र = १-३</u>
भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत ।
षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ । तमहं कुमारम्ब्रुवं नाहमिमं वेद ।
यध्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति ।
समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हम्यनृतं वक्तुम् ।
स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज । तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥१॥
तस्मै स होवाच ।
इहैइवान्तःशरीरे सोभ्य स पुरुषो यस्मिन्नताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ॥२॥
स ईक्षाचक्रे ।
कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि
कस्मिन्वा प्रतिष्टिते प्रतिष्टस्यामीति ॥३॥

हे हिरण्यनाभ !
कोशल राजकुमार ने पूछा प्रश्न इस प्रकार,
सोलह कलाओं से उत्पन्न पुरुष कौन हैं प्रभु बतलाएँ
मुझे निराश न करें शीघ्र ज्ञात कराएँ
जान कर असत्य कदापि न बोलूँ
न ही नाश का भागी बनूँ
इस प्रकार राजकुमार
चुपचाप बैठ रथ पर गए
अतः आज पूछ रहा कौन पुरुष है सोलह कलाओं वाला |
पिप्लाद ऋषि ने कहा
पिप्लाद मुनि ने जो बताया वह ज्ञान मुझमे अर्जित हो,
पुरुष जो सोलह कलाओं वाला वह है देह के अन्दर,
यह कलाएं जग में प्रकट हैं |
आपने यह सोच पहले जग की कर दी रचना,
जिसमे रहते हुए तत्व रूप में दीखते,
जगत धरा में तत्व जाते,
हमारी स्थिति नही रहती तब,

तत्व के रहने से ही जग में सत्ता व्यक्त रहती |

<u>मन्त्र =४ -५</u>
स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनः ।
अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ॥४॥
स यथेमा नध्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं
गच्छन्ति भिध्येते तासां नामरुपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ।
एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं
प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिध्येते चासां नामरुपे पुरुष इत्येवं
प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥५॥

हे नाथ !
सोच विचार कर रची कलाएँ इस प्रकार,
पहले रचा प्राण
फिर
कर्म, श्रद्धा, व्योम, वायु, तेज़, वारि, पृथ्वी, इन्द्रिय,मन
फिर की आपने अन्न की रचना जिससे बना वीर्य
तप कर्म मन्त्रों को रच इस लोक व् नाम को रचा,
फिर इन सोलह कलाओं से युक्त यह ब्रह्माण्ड रचा,
इस ब्रह्माण्ड में सोलह कलाओं वाले पुरुष को रचा
देह के कई विभाग बनाए, |
ज्यूँ सागर की दिशा में जाने वाली समस्त नदियाँ
सागर में ही समाहित होती हैं,
और वे सागर ही कहलाती हैं ,
उनका अपना अस्तित्व समाप्त हो जाता है,
इसी प्रकार जग की सोलह कलाएं
प्रलय काल में आपमें लुप्त हो जाती हैं
नश्वर प्रभु आप इसी लिए कहलाते,
अतः सोलह कलाओं से पूर्ण तो मात्र आप हैं प्रभु |

<u>मन्त्र =६-७</u>
अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्टिताः ।
तं वेध्यं पुरुषं वेद यथ मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥६॥
तान् होवाचैतावदेवाहमेतत् परं ब्रह्म वेद ।
नातः परमस्तीति ॥७॥

हे स्वामी !
रथ की नाभि सम समस्त कलाएँ
आप में ही वास करती हैं,

प्रभु आपको ह्रदय में निवास कर,
मृत्यु के दुःख से निवृत रहूँ |
पिप्लाद मुनि ने तब कहा,
जितना पूछा गया
उतना बतलाया मैंने,
ब्रह्म विषय से श्रेष्ठ कुछ नही,
आज यह आप जान लीजिये |

मन्त्र =८
ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविध्यायाः
परं परं तारयसीति । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥८॥

हे स्वामी !
सभी छः ऋषियों ने किया पूजन
पिप्लाद ऋषि को किया नमन
सत्य पिता आप हैं
आपने अज्ञान से निकाल कर
ज्ञान दिया
नमन आपको, वंदन आपको ||

|| इति अर्थव वेद रचित प्रश्न उपनिषद ||

99 वेद से वेदांत तक

मंडूक उपनिषद

अथर्व वेद

सुरेश चौधरी 'इंदु'

<u>श्री मंडूक उपनिषद-परिचय</u>

मुण्डक उपनिषद मुख्य दस उपनिषदों में से एक है, जो अथर्व वेद से लिया गया है, इसमें ६४ श्लोक हैं जो तीन अध्याय में बँटे हैं, जो पुनः कई खण्डों में बँटे हैं | मुंड का अर्थ केश विहीन होता है, एवं प्राचीन काल में साधूजन केश नही रखते थे एवं मात्र शिखा रखते थे अतः मुण्डक वहां से उद्दृत है| कुछ लोगों का मंतव्य है की माया रूपी केश का मुंडन इस उपनिषद को पढ़ने से होता है अतः यह मुण्डक है| कुछ भी हो गहरे विचार एवं रहस्य से अनुदित यह शास्त्र अभूतपूर्व है | परा ज्ञान, स्वयम को जागृत करने हेतु एवं अपरा ज्ञान सांसारिक वस्तुओं के हेतु, बताया गया है | जब शौनक ऋषि अंगीरा के पास पहुँच कर पूछते हैं कि क्या जानने से सब कुछ जान जायेंगे, तब अंगीरा कहते हैं कि परा एवं अपरा ज्ञान ही सब बता सकता है | कर्म सन्यास को बतलाता है यह उपनिषद जो की स्व-अध्याय की सोपान है| लालसा, मनोकामना, पुनर्जन्म अदि को परिभाषित करता यह उपनिषद अद्वितीय है| **“ सत्यमेव जयते”** इसी उपनिषद के श्लोक ३-१-६ से लिया गया है |

<u>मंडूक उपनिषद</u>

<u>शान्तिपाठ</u>
ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
ॐ शान्तिः । शान्तिः । शान्तिः ॥

हे स्वामी !
इतनी कृपा कीजिये,
कानो से मंगल सुनूँ, आँखों से देखूँ मंगल ही,
आपकी पूजा करूँ तो करूँ मंगल हेतु,
आप के ही लिए बनाई यह सुन्दर काया

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

आप ही के लिए बनाये ये सुंदर अंग प्रत्यंग |
यश वृद्धि आपने दी,
पूषा, इंद्र, अनिष्टहर्ता गरुड़,
सब आप ही के रूप,
बृहस्पति एवं सर्व धातु भी अनिष्ट का हरण करें,
आपकी कृपा पाता रहूँ,
मन-वचन में आप समाये रहें ||
आप जीवन में शांति प्रदान करें ,
ॐ शांति शांति शांति ||

<u>प्रथम मुण्डक , प्रथम खंड</u>

<u>मन्त्र =१-३</u>
ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥१॥
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तं पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥२॥
शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ ।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥३॥

हे ब्रह्म देव !
आप हैं जगत के रचियता रक्षक
ब्रह्मा को आपने सर्वप्रथम रचा
अथर्वा और बड़े पुत्र को ब्रह्म विद्या दी |
अथर्व को अंगीकार किया सत्यव्रत ऋषि ने
फिर परंपरागत विद्या अंगीरा ऋषि को दी |
शौनक मुनि थे अधिष्ठाता; महान विद्यालय के,
विधि पूर्वक वे अंगीरा ऋषि के पास आये,
कहा उन्होंने प्रभु! निश्चय पूर्वक बतलाएँ
कौन है जो जानता सर्व ज्ञान है ?

<u>श्लोक -४-६</u>
<u>परा एवं अपरा विद्या</u>
तस्मै स होवाच । द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म
यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥४॥
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा
कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति ।
अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥५॥

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम् ।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥६॥

हे नाथ !
तब अंगीरा ने कहा
ज्ञानी निश्चय जानते
परा एवं अपरा विद्या जो मानते
वही सर्व ज्ञानी कहलाते |
छंद व्याकरण से समायोजित
चार वेदों का सृजन और
निरुक्त ज्योतिष अपरा विद्या है,
परम अविनाशी ब्रह्म जहाँ चले पता
वह विद्या होती परा विद्या |
जो पकड़ कर भी न पकडाए
होता वह ब्रह्म है,
न कोई रूप न कोई रंग,
न कोई आँख न कोई कान
वह अविनाशी सर्व व्याप्त है
सूक्ष्म से अति सूक्ष्म
जीव मात्र का कारण है वो,
ऐसा ही तो बतलाया आपने प्रभु |

श्लोक =७-९
यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाऽक्षरात् संभवतीह विश्वम् ॥७॥
तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥८॥
यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायाते ॥९॥

हे सृष्टि पति !
करोडो को निर्मित करते,
उदर में ही सर्जित करते,
धरा से औषधि वनषपति उपजाते आप,
मनुज के अंग से रोम में उपजाते आप,
अविनाशी पर ब्रह्म की सृष्टि बंटी इस प्रकार |
संकल्प कर ब्रह्म रूप से ब्रह्म उत्पन्न होते,
अन्न, अन्न से प्राण, प्राण से मन बने

स्थूल जग के समस्त लोग निर्मित होते तब
कर्म करने को फल की इच्छा धारी
सब प्रकट होते तब |
ज्ञान रूप सर्वग्य ब्रह्म में महा जग है,
विराट जग में नामरूप अन्न भरपूर है,
ब्रह्म तत्व जान कर जानते हैं सभी
यही मूल है जान कर जानते सभी ||

<u>प्रथम मुण्डक, द्वितीय खंड</u>

<u>श्लोक=१-३</u>
तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि ।
तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥१॥
यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाऽऽज्यभागावन्तरेणाऽऽहुतीः प्रतिपादयेत् ॥२॥
यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासम चातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च ।
अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥३॥

हे स्वामी !
यज्ञ एवं तप के कर्मों के मन्त्र को ऋषियों ने देख
सब वेदों में लिखा समझ खूब कहा
इस जग में मनुष्य निज नियम मान कर्म करते
यही एक मात्र मार्ग उन्नति का है, |
अग्निहोत्र ने सर्वदा दे आहुति
मध्यभाग में कुंड के ,
अग्नि देव खूब दहके |
अग्निहोत्र पूर्णिमा,अमावस्या करते नही यज्ञ
चतुर्मसीय यज्ञ जो नविन अन्न करे नही
अतिथि सत्कार करे नही,
आहुति दे ठीक बने नही
वैश्वदेव को अर्पित नही |

<u>श्लोक=४ -६</u>
<u>अग्निहोत्र का फल</u>
काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥४॥
एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन् ।

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥५॥
एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति ।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥६॥

हे परमात्मन !
काली खूब उग्र बन मन को करे चंचल
लाल धूम भरे धूम्र चिंगारी करे
सात अग्नि करे प्रकाशित
सर्व दिशा में
तब आहुति दे उग्रता कम करे
अन्यथा राख हो जाए |
अग्निहोत्र समय पर जो करें आहुति वे धरें
यह आहुति रवि रश्मियाँ बन पहुँची इंद्र पास
आप कह रहे जो करते यज्ञ वे पहुँचते स्वर्ग अवश्य
अग्निहोत्र ने इस विधि बताया
स्वर्ग प्राप्ति का उपाय |
सूर्यकिरण बनी आहुति कह रही
आवो शुभकर्मो का फल श्रेष्ठ लोक में होता शोभित
यहाँ मधुर वाणी करती सत्कार
आहुति साधक को लती स्वर्ग द्वार |

मन्त्र=७-९
प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥७॥
अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः ।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥८॥
अविद्यायं बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ।
यत् कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥९॥

हे नाथ !
यह यज्ञ रूपी नौका दृढ़ सर्व साथ
सकाम कर्म, वाणी है इसमें
दुःख का नही कोई काम
यहाँ इस यज्ञ में मूर्ख कहते वही
जरा मृत्यु छूटे नही जिनसे
जो न पाते आपको |
जो अँधा है अंध मार्ग पर चल रहा
भटकता है वह पंडित नही अज्ञानी कहलाय |
सकाम कर्मो में लिप्त कृतार्थ अपने को मानता

विषयों का रस छोड़ जो कल्याण मार्ग अपनाता
उसे हर जन्म में पुण्य मिले
आपको प्राप्त होता वही दुःख दर्द भुलाये वही |

श्लोक=१०-१३
विरक्त मनुष्य का वर्णन

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ॥१०॥
तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥११॥
परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्रह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥१२॥
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥१३॥

हे नाथ !
यज्ञ के सकाम कर्म उत्तम कहलाते
मुर्ख तो अनेक हैं, उत्तम वस्तु को न पहचानते
स्वर्ग लोक में भोग भोगने पुन्य मिले तो,
इस लोक से निचे लोक में वे जाते |
वन में बस कर जो प्राप्त करते शांति
तप एवं श्रद्धा से विद्वान करते भिक्षा प्राप्ति,
म्रत्यु उपरांत जाते सूर्य मार्ग से
जहाँ आप अविनाशी नित्य पुरुष रहते |
कर्म का कर विचार
ज्ञानीजन कहें यह सार
सकाम कर्मो से प्रभु आप होते नही प्राप्त
ब्रह्म ज्ञान मिले तो ब्रह्म निष्ठ होते
हाथ में समिधा ले गुरु रूप आपको मान जाते
आपके पास |
शांत चित्त हैं जिनका,
मन करता संयमित इन्द्रियों को जिनका
ऐसा ज्ञानी शरण आवे
ऐसा शिष्य मुझे बनाओ,
तत्व विवेचन ज्ञान गुरु दें देव आप.
पा आपको प्रिय बनूँ आपका ||

सुरेश चौधरी 'इंदु'

<u>॥ द्वितीय मुण्डके प्रथमः खण्डः ॥</u>

<u>श्लोक=१-३</u>
तदेतत् सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाऽक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ॥१॥
दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ॥२॥
एतस्माज्जायते प्रणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥३॥

हे स्वामी !
जिस प्रकार प्रखर अग्नि से सहस्त्रों रश्मिया जागृत होती हैं,
वैसे ही नित्य ब्रह्म से विभिन्न पदार्थ उत्पन्न होते हैं |
आप दिव्य हो, पूर्ण हो, मन में प्राण नही पर आप
अन्दर बाहर से बहुत व्यापक हो,
जन्म मरण से परें,
निराकार, विशुद्ध सम्पूर्ण हो,
अविनाशी हो, जीवात्मा में श्रेष्ठ परमात्मा आप हो |
जिनके प्राण हो, मन इन्द्रिय भी उनकी हो,
आकाश, पवन, से तेज़ जल, पृथ्वी से भरपूर |

<u>श्लोक=४-६</u>
अग्नीर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः ।
वायुः प्रणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥४॥
तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् ।
पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् संप्रसूताः ॥५॥
तस्माद्दचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च ।
संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥६॥

हे नाथ !
अग्नि आपका मस्तक हैं,
सूर्य चन्द्र चक्षु आपके,
दिशाएं कान हैं, वेद वाणी हैं,
वायु प्राण हैं,
विश्व हृदय है,
आपके चरणों से पृथ्वी बनी,
हे अन्तर्यामी आप घट घट में बसते हो |
सामवेद, ऋग्वेद की ऋचा

यज्ञों की दीक्षा, कालजयी यजमान
पुन्य प्राप्ति के लोक
सब मिलते
जहाँ सूर्य चन्द्र का प्रकाश मिलता
जहाँ आप प्रकट होते |
विभिन्न देव हैं, ब्रह्म से हुए प्रकट सब,
साध्य गन से साध्य
मनुष्य, पशु पक्षी, वायु, अन्न, आये,
तप श्रद्धा यज्ञ की विधि
सत्य ब्रह्चर्य सब प्रकटे
परमात्मा आपके कारण |

श्लोक= ७-१०

तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि ।
प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्ध सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥७॥
सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः ।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥८॥
अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥९॥
पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् ।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ॥१०॥

हे नाथ !
सात प्राणों की सात अग्नि ज्वाला हैं,
सात द्वार इन्द्रियों के, सात ही लोक बनाये,
सात विषय की समिधा बनी, जो ह्रदय में बसी,
इस तरह सात सात का विभाजन किया प्रभु आपने |
समुद्र बनाए, पर्वत बनाए,
बहु रूपी नदियाँ भी बनाईं,
देह पुष्टि हेतु रस एवं औषधि बनाई,
इस पुष्ट देह में बसने वाले परमात्मा
प्राण एवं जीवन संग बसे रहें |
तप कर्म बन ब्रह्म बने परमात्मा
यह परमात्मा ह्रदय की गुहा में बसें,
ह्रदय की गाँठ खोल प्रभु,
अज्ञान बन्धु की भाँति
आप भी छूट जाएँ ||

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

॥ द्वितीय मुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥

श्लोक=१-३
आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत् समर्पितम् ।
एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं
विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥१॥
यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च ।
तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः ।
तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ॥२॥
धनुर् गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं सन्धयीत ।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥३॥

हे जगतपति !
हृदय गुफा में वास करने वाले
हे तेजोमय सन्निकट रहो,
महान पद के स्वामी,
प्राणों के आश्रयदाता
सत्य असत्य के ज्ञाता
मन बुद्धि को जान
श्रेष्ठ पसंद करो, |
आप दीप्तिमान हैं,
आपमें सौ लोक वास करें,
आप अति सूक्ष्म भी हैं,
मन वाणी प्राण सत्य करें
अमृत है, आदर्श है, लक्ष्य उत्तम है,
उस उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु
आप साधन हैं |
प्रणव की धनुवा,
उपासना के तीक्ष्ण बाण
तल्लीनता से साध कर
ब्रह्म का लक्ष्य भेदन करूँ |

मन्त्र=४-६
प्रणवो धनुः शारो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ॥४॥
यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः ॥५॥
अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः । स एषोऽन्तश्चरते बहुधा

जायमानः
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥६॥

हे नाथ !
प्रणव की धनुष
आत्मरूपी बाण
आप हों लक्ष्य
बाण से भेद कर प्राप्त करूँ आपको,
प्रमाद छोड़ साधक बन किस विधि लक्ष्य प्राप्त हो
तन्मय प्रभु आप ही रहें लक्ष्य सदा |
स्वर्ग में, गगन में, भूमि पर,
लोगों के मन व्यथित हैं
हे प्रभु जान कर भी
अन्य वार्ता न करूँ,
यह ही अमृत कुंड है |
नाड़ी में एक ही वास,
हृदय में आपका निवास
प्रणव उच्चारण से आपका ध्यान धरूँ
भवसिन्धु के तट से, अंधकार से,
आप ही पार करें
आप ही कल्याण करें |

श्लोक=७ -९
यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि ।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ।
तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद् विभाति ॥७॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥८॥
हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषं ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः ॥९॥

हे निर्विकार स्वामी !
सर्व सर्वदा जानते
विश्व में आप ही हैं
ब्रह्म लोक में आत्मा,
गगन में भूमि में मन एवं प्राण
इन सब के स्वामी
देह में व्याप्त आप हैं,

आनंद रूप में मुझे मिलें ज्ञानी बनायें |
तत्व की जानकारी से हृदय गाँठ टूटे
छूट जाय शंका, कर्म के कष्ट नष्ट हो जाय |
निर्विकार निर्मल परमात्मा
शुद्ध तेज़ के तेज़ आप,
परमधाम में वास करते आप,
मुझे आत्म ज्ञान मिले ताकि
मैं आपको भी पहचानू,
प्रकाशमय धाम में विराजते प्रभु को जानू |

मन्त्र=१०-११
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१०॥
ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥११॥

हे स्वामी !
सूर्य प्रभा को चन्द्र प्रभा न जीत सके,
चपला चमके नही, अग्नि के तेज़ बिना,
आपके प्रकाश से प्रकाशित जग सारा
सर्व पदार्थ जगत के प्रकाशित होते |
ब्रह्म आगे पीछे, दाहिने बाएँ हैं
नीचे ऊपर ब्रह्म हैं ,
सर्व व्यापक सर्व स्थल ब्रह्म हैं,
यही ब्रह्म प्रकाश है जगत रूप में विकसित
अमृत रूपी ब्रह्म बिना
कोई भी अस्तित्व नही ||

|| तृतीय मुण्डक, प्रथम खंड ||

श्लोक= १-५
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥१॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनिशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥२॥
यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥३॥

हे जगदीश्वर !

दो पक्षी एक वृक्ष पर रहते,
एक फल रसास्वादन करे,
एक मात्र देखता रहे |
जीवात्मा परमात्मा भी इसी भाँति देह में रहते,
जीव कर्म भोग करे, परमात्मा अवलोकन करे |
जीव तो राग में लिप्त, न देखे आपको,
मोह के वशीभूत वह, दीन है यह, शोकाकुल है यह,
भक्त ही परमात्मा आपको सेवते,
जो सेवते वे शोक रहित रहते |

श्लोक=४-६
प्रणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी ।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावा- नेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥४॥
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥५॥
सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥६॥

हे स्वामी !
ब्रह्मा कर्ता, जग के रचता,
प्रभु आपको हैं प्रिय,
तेजोमय हैं आप परम ब्रह्म,
देख देख जीव हो प्रसन्न,
छुट पाप पुण्य से अनासक्त होते,
ज्ञान मिले, शांत बुद्धि प्राप्त हो |
आप तो हो प्राण, समस्त जग चलता उस से,
सर्व जगह प्रकाश उसका,
जो जान ले इसे उसकी कोई बड़ाई न हो,
कर अर्पण कर्म अपने प्रभु आपको,
आनंद प्राप्त करूँ मैं,
सब ही जगह हैं आप,
ज्ञानी तत्ववेत्ता कहते ये |
सत्य से प्राप्त हो, तप से मिलें आप
ब्रह्मचर्य से यथार्थ ज्ञान आपसे मिले
हृदय में ज्योति रूप हो
विशुद्ध ज्योति परमात्मा,
दोषरहित मैं बनूँ
हो प्राप्त आप मुझे||
विजय तो सर्वदा सत्य की ही होती है

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

और असत्य की हानि,
आप प्राप्त होते सत्य से,
आप ही सत्य जग झूठा,
आपकी प्राप्ति का मार्ग सत्य से ही है,
ऋषि मुनि भी जानते
परम सत्य मात्र आप हो |
(भारत के राष्ट्रिय प्रतीक अशोक स्तंभ पर लिखा यह वाक्य सब ने पढ़ा होगा “ सत्यमेव जयते“ यह इसी श्लोक स: ६ से लिया गया है | ==सुरेश चौधरी)

श्लोक ७-१०

बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यन्त्विहैव निहितं गुहायाम् ॥७॥
न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मण वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥८॥
एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश ।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥९॥
यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् ।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां- स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेत् भूतिकामः ॥१०॥

हे सच्चिदानंद !
हे अचिन्त्य रूप धारी परमात्मा
आप ही महान दिव्य ब्रह्म हैं,
सूक्ष्म से अति सूक्ष्म, दूर से अति दूर हैं,
देह में रहते आप,
जो देखते आपको उसके ह्रदय में बसते आप
बाण से इन्द्रियां न पकड़ाए,
नयनो से देखा जाय,
तप कर्म जो नही करते उनको
अंग विहीन लगते परमात्मा,
ध्यान धर ह्रदय चक्षु से देख सकूँ,
पवित्र का अंतर समझ सकूँ,
निर्मल ज्ञान दृष्टी प्रदान करें |
सब के अंतस ब्रह्म विराजित,
जो नही जानते अज्ञानी हैं,
पाँच प्राण जहाँ रहते, अति सूक्ष्म हैं आप,
जो मन से जानते करते इच्छापूर्ति सदा
जो इस भाँति जानते आपको, रहते समीप सदा,

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

पवित्र मन से पूजूं करूँ आपको प्राप्त |
शुद्ध हृदय से जो चाहते विभिन्न लोकों को,
वे प्राप्त करते उन लोकों को और भोगते भोग
वही ऐश्वर्य उनका, वे ही पुन्य मानते,
मुझे आत्मा से प्राप्त ज्ञान दीजिये, स्तुति मैं करता ||

<u>तृतीय मुण्डक , द्वितीय खंड</u>

<u>श्लोक १-३</u>

स वेदैतत् परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥१॥
कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र ।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥२॥
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥३॥

हे नाथ !
परम ब्रह्म विश्व के निहित आप वैदिक रूप से
शुभ करते हो
जो भी आपकी उपासना करता है,
वह जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है |
जो भोगों की इच्छा से भोग लोक में आता है
परन्तु मैं आपके प्रेम की इच्छा रखूँ
और जन्म उपरांत आपको प्राप्त करूँ
इस बंधन से छुट हमेशा के लिए आपका बन धन्य होऊँ |
बहुत सुनने से या व्याख्यान से आप नही मिलते,
जिस पर आपकी कृपा हो उसे ही मिलते आप,
जो मनोकामना से पूजें वही मिलते आपको,
आपके सत्य स्वरुप को दर्शन भी वही करते |

<u>श्लोक=४-६</u>

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिङ्गात् ।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥४॥
संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥५॥
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥६॥

हे नाथ !

भक्ति से ही मिलेंगे न मिलें निर्बल मन को,
अशुद्ध तप से नही मिलते परमात्मा,
जो साधक विचार कर उपासना करते
चित्त को लगा आत्म प्रवेश करते
उन्हें मिलते परमात्मा |
पवित्र ऋषियों की आसक्ति भी छुटती
ज्ञान से पूर्ण तृप्ति भी मिलती,
शांति मिले,
मुझे ज्ञान मिले ईश्वर साथ हो
सब देख सर्व तरफ पाऊँ आपको |
ज्ञान एवं विज्ञान से निश्चय ही तत्व का भास होता है,
योग एवं फल त्याग से मन का मेल दूर होता है,
इस प्रकार मेरी देह ब्रह्मधाम जाए
अमृतरूप बन मुक्त होऊँ |

श्लोक=७ -९

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्वे एकीभवन्ति ॥७॥
यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽ स्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥८॥
स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति ।
तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥९॥

हे परमात्मा !
जो ईश्वर को पाते उनकी देह वहीँ रह जाती,
पंद्रह इन्द्रियों के विकार एक हो जाते,
कर्म सब जीव संग ज्ञानमय ईश्वर के हो जाते,
पूर्ण महात्मा इश्वर के साथ एक हो जाते |
जिस प्रकार नदियाँ सागर से मिल कर एक हो जाती हैं,
दिव्य उत्तम प्रभु आपकी दिव्यता में एक हो जाऊँ
जो आपको जानता वही आप में मिल जाय,
ब्रह्म को जो जानता वह पुत्र कुल में न रहे,
शोक सिन्धु से तर कर वह पापों से मुक्त होता,
मेरी भी अज्ञान की गांठ ह्रदय से खोल अमर करें |

मन्त्र=१०-११

तदेतदृचाऽभ्युक्तम् ।
क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः ।
तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम् ॥१०॥
तदेतत् सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते ।
नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥११॥

हे जगन्नाथ !
निष्काम कर्म करे जो ,ज्ञान वही पाता
आपमें निष्ठा बनी रहे
सच्ची श्रद्धा बनी रहे,
तप, हवन करता रहूँ
व्रत नियम पालन करूँ
इस भांति ब्रह्म प्राप्ति करूँ
आशीर्वाद दीजिये |
अंगीरा ऋषि ने कही सत्य विद्या,
प्रभु प्राप्ति की दी शिक्षा,
हे परम ऋषि नमन तुझे
बारम्बार नमस्कार करे यह जिज्ञासु ||

|| ईति अथर्ववेद रचित अथ मुन्डकोपनिषद ||

माण्डुक्य उपनिषद

माण्डुक्य उपनिषद-परिचय

उपनिषदों में सबसे छोटा मात्र १२ श्लोकों का यह उपनिषद मुख्यतः ॐ को परिभाषित करता है, ॐ शब्द हिन्दू विचारधारा का प्राण है, अन्य उपनिषद इसी लिए इसे विशेष स्थान देते हैं, संस्कृत में माण्डुक मेढक को कहते हैं, परन्तु ऐसा माना जाता है की यहाँ माण्डुक से अर्थ माण्डुक्य ऋषि से है, ब्रुहदार्यनक उपनिषद में भी ऋषि माण्डुक्य का उल्लेख है, यह उपनिषद बहुत ही महत्वपूर्ण है क्यूंकि यह गहराई से ॐ की समीक्षा करता है जो मुख्यतः तीन अक्षरों के मेल से बना है, अ उ म| जागृत अवस्था का प्रतीक अ है, उ स्वप्नावस्था का प्रतीक , म सुषुप्तावस्था का प्रतीक , यह एक चौथी अवस्था तुरीय अवस्था पर भी चर्चा करता है, यह

अनदेखी अनसुनी अवस्था है, यह मौन या शून्य की प्रतिनिधि अवस्था है| तीन मात्राएँ अ उ म ब्रह्मा विष्णु महेश की भी प्रतीक हैं|श्वास लेते समय अ का उच्चारण करें एवं ब्रह्मा का ध्यान, उ का उच्चारण में विष्णु का एवं क को रोके रखें, श्वास छोड़ते हुए म का एवं शिव का ध्यान रहना चाहिए |

.**<u>॥ अथ माण्डुक्योपनिषद ॥</u>**

<u>|| शान्ति पाठ ||</u>
ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।
ॐ शांतिः । शांतिः । शांतिः ॥

हे स्वामी !
इतनी कृपा कीजिये,
कानो से मंगल सुनूँ, आँखों से देखूँ मंगल ही,
आपकी पूजा करूँ तो करूँ मंगल हेतु,
आप के ही लिए बनाई यह सुन्दर काया
आप ही के लिए बनाये ये सुंदर अंग प्रत्यंग |
यश वृद्धि आपने दी,
पूषा, इंद्र, अनिष्टहर्ता गरुड़,
सब आप ही के रूप,
बृहस्पति, एवं सर्व धातु अनिष्ट का हरण करें,
आपकी कृपा पाता रहूँ,
मन में वचन में आप समाये रहे ||
आप जीवन में शांति प्रदान करें ,
ॐ शांति शांति शांति ||

<u>श्री माण्डुक्य उपनिषद</u>

<u>मन्त्र =१-३</u>
ॐ इत्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं
भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव
यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥१॥
सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥२॥
जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः
स्थूल भुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥३॥

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

हे नाथ !
ॐ रचित अविनाशी परमात्मा हो आप,
आपकी महिमा गाता मैं निष्पाप,
जग है, रहेगा और रहा अब तक अपकर ही प्रताप
प्रभु आप भूत , भविष्य वर्तमान से परे हैं,
आप प्रणवाक्षर में भरे हैं |
जगत तो ब्रह्म है, आत्मा ही परमात्मा,
चार प्रकार नियमित किये आपने |
यह देह जगत है, ज्ञान से आपने किया व्याप्त,
सात लोक अंग इसके भोक्ता मनुज बनाया,
उन्नीस मुख से समस्त जग धारण किया,
आप ही प्रथम पाद हो विद्वतजनो ने कहा |

<u>मन्त्र =४-६</u>
स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञाः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः
प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः ॥४॥
यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते
न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत् सुषुप्तम् ।
सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो
ह्यानन्दभुक् चेतो मुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥५॥
एष सर्वेश्वरः एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः
सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥६॥

हे स्वामी !
पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ पाँच प्राण,
अन्तःकरण चार ये है उन्नीस मुख जग के,
सूक्ष्म जग के ज्ञान जान कर हुआ हर्षित,
प्रकाश का स्वामी भोक्ता
परमात्मा द्वितीय प्रकार से आप रहें |
इस में सुप्तावस्था में की गयी कामना,
आपके लिए प्रलायावास्था या
सुषुप्ति अवस्था कहलाये,
वह एक शरीर ही है, एक रूप विज्ञ,
प्रकाश मुख है, प्रभु वह है प्राज्ञ |
ये तीन रूप आपके, सर्व तम आप हैं
सर्वग्य, अंतर्यामी, जग के कारण आप हैं,
मैं जीव आप से ही जन्मता एवं
जाऊँगा फिर आपके पास ही,

विभिन्न नाम हैं पर आप एक हैं
मुझे बस आप कर्म ज्ञान दिजिये ||

मन्त्र ७- ९
नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् ।
अदृष्टमव्यवहार्यम ग्राह्यमलक्षणं अचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म
प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं
चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥७॥
सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्करोऽधिमात्रं पादा मात्रा
मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥८॥
जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्
वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥९॥

हे देव !
जो ज्ञान बाहर है अन्दर नही वह ज्ञान
जो न ज्ञान स्वरुप वह ज्ञाता नही न ही विद्वान्
जो दृश्य नही, जो श्रुति नही, जो ग्राह्य नही,
न जो ज्ञात वह है प्रपंच
मंगल शांति निराकार रूप में मिले जो रूप प्रभु आपका |
ॐ कार में स्थित तीन रूप प्रभु आपके,
तीन मात्रा ॐ कार की रूप हैं आपकी |
प्रथम मात्रा अकार व्याप्त सर्व शब्दों में
यह आदि से व्याप्त प्रभु प्रथम रूप में,
इस भांति भोग वृद्धि प्राप्त हो,
इस श्रेष्ठ जग में उपासना करता रहूँ |

मन्त्र १०-१२
स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षात्
उभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति
नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥१०॥
सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा
मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥११॥
अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत
एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद ॥१२॥

हे प्रणव !
दूसरी मात्रा उकार जो श्रेष्ठ है पहली से ज्यादा,
अ एवं म के मध्य दोनों का मेल करे
यह तेजस प्रभु के तेज के द्वितीय स्वरूपों को कहे |

मकार पूर्ण करे पहले दूसरी मात्राओं को,
ज्यूँ सुषुप्ति विलीन हो भाव लिए,
यह तो परमात्मा आपका तृतीय रूप,
जो जान ले इसे भाव सागर पार करे |
ॐ कार की मात्राएँ धरा पर अतीत प्रपंच हैं
शिवरूपी मन वाणी की विरंच हैं
चतुर्थ पद परमात्मा का आत्मा से मिलन कर
सुख देती रहे सदा ||

|| इति माण्डुक्योपनिषदम् ||

ऐतरिय उपनिषद

ऋगवेद

ऐतेरिय उपनिषद –परिचय

मुख्य उपनिषदों में एक ऐतेरिय उपनिषद ऋगवेद की शाखा है, यह तीन खण्डों में ३३ मन्त्रों से रचा गया है| पहला खंड आत्मा को सर्वोपरि रख कर दैवीय शक्ति दर्शाता है| द्वितीय खंड में आत्मा के तीन जन्म बताये गए हैं जबकि तृतीय खंड में ब्राह्मणों के गुण |
वेदांत के उद्भाषक शब्द चार महा वाक्य के एक वाक्य के बारे में भी बताया गया है |
प्रग्यानाम ब्रह्म ३.३ (ऐ.उ.) अथार्थ ब्राह्मण का अंतस ज्ञान
अहं ब्रह्मास्मि,१.४.१० (ब्रह: उ:)यजुर्वेद अथार्थ मैं ब्राह्मण हूँ
तत् त्वम् असि,(छ:उ:) ६.८.७ सामवेद अथार्थ तुम वह हो,
अयं आत्मा ब्रह्म१.२ (माण्डूक्य) अथर्व वेद निज में मैं ब्राह्मण हूँ ||

ऐतारिय उपनिषद

शांति पाठ
वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि ॥
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्
संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ॥
तन्मामवतु तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥
ॐ शांतिः । शांतिः । शांतिः ॥

हे स्वामी !
मेरी वाणी मन में स्थित हो, और मन वाणी में,
अथार्थ सत्य से बढ़ कर मन एवं वाणी एकाकार हों,
तेज़ रूप हैं नाथ आप,
मेरे लिए प्रकट होवें आप,

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

ओ ! मेरे मन वाणी द्वारा मुझे वेद ज्ञान दिलाओ,
मिल कर संभल कर तो यह गया मन छोड़े न,
ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति में दिन रात भूल चूका,
सर्वदा सत्य की वृद्धि हो , श्रेष्ठ ही बोलूँ
हे गुरुवर प्रभु रक्षक बन रहो ||
ॐ! शांति:! शांति:! शांति:!!

<u>प्रथम अध्याय –प्रथम खंड</u>

<u>मन्त्र-१-२</u>
ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् ।
स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥१॥
स इमाँ ल्लोकानसृजत ।
अम्भो मरीचीर्मापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः ॥
पृथिवी मरो या अधस्तात्त आपः ॥२॥

हे नाथ !
अकेले आप ही हुए प्रकट
अबसे पहले जब जग बना
कोई अन्य था नही जब जग आपने रचा |
भिन्न भिन्न लोक,
द्युलोक रचने के बाद ऊपर के लोक अम्भ को रचा
सूर्य रचा तारे रचे चन्द्र रचा
और रचे मरीचि नामक अंतरिक्ष,
मर नाम मृत्यु लोक, पाताल रचा,
फिर रचे जग के सारे मनुष्य |

<u>मन्त्र -३-४</u>
स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति ॥
सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् ॥३॥
तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डं
मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतं नासिकाभ्यां प्राणः ॥
प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतमक्षीभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः
कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्रद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत
त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधि वनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत
हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या
अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः ॥४॥

हे नाथ !
लोकों की रचना के बाद
किया आपने एक और काम,
रक्षा हेतु लोकपाल बनाए,
हिरण्यमय पुरुष को जल से निकाल साकार किया,
सर्वप्रथम ब्रह्मा ने जल में पुरुष निर्माण किया |
हिरण्यमय पुरुष ने किया संकल्प
आप ने संकल्प से किया विकल्प,
मुख बनाया, मुख से बनाई वाणी,
अग्नि देव हुए प्रकट वाणी से
नासिका प्रकट हुई तत्पश्चात
नासिका से प्राण, प्राण से वायु हुई प्रकट,
दो नेत्र बने चक्षु देव बने, उनसे बने सूर्यदेव,
दो कर्ण छिद्र हुए, उनसे हुए कर्ण रूपी इन्द्रियाँ
श्रोत्र के साधन बने सर्व दिशा की ओर
त्वचा बनी फिर रोम रोम बने उनसे प्रकट हुई
औसधियाँ एवं वनस्पतियाँ
हृदय बनाया आपने उस से उत्पत्ति मन की
मन से चन्द्र
नाभि निर्माण हुआ, अपान वायु प्रमाण हुआ,
प्रकट उस से हुए मृत्यु देव,
तदुपरांत लिंग का किया निर्माण,
लिंग से वीर्य, वीर्य से जल,
इस प्रकार पुरुष से अनेक रूप रचना हुई ||

<u>प्रथम अध्याय द्वितीय खंड</u>

<u>मन्त्र १-३</u>
<u>मनुष्य देह की रचना</u>
ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतन् ।
तमशनापिपासाभ्यामन्ववार्जत् ।
ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥१॥
ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ।
ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥२॥
ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति पुरुषो वाव सुकृतम् ।
ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति ॥३॥

हे जगत्पति !

आपने देवों को रच भाव सिन्धु में भेजा,
तब देवों ने आपसे माँगा
एक स्थान जहाँ वे बसें एवं आहार विहार करें |
तब गौ माता बनाई आपने,
देव् और बोले तब अश्व बनाया,
देव फिर भी न खुश हुए
कहें ये हमारे योग्य प्राणी नही |
तब आपने मनुष्य शरीर निर्मित किया,
देव प्रसन्न हुए कहा अति मनोहर यह,
मनुज देह आपकी सर्वोत्कृष्ट उत्पत्ति है,
इस काया में सब देव निज निज स्थान विराजित हैं |

मन्त्र=४-५
अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा
नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशाद्दिशः
श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधि वनस्पतयो लोमानि
भूत्वा त्वचंप्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्यु
रपानो नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥४॥
भूत्वा तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति ते
अब्रवीदेतास्वेव वां देवतास्वाभजाम्येतासु भागिन्न्यौ करोमीति ।
तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते
भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ॥५॥

हे स्वामी !
अग्निदेव मुख एवं वाणी में प्रवेशित हुए,
वायुदेव प्राण बन नासिका में जा बसे,
सूर्य देव नेत्र रूप दृग कोपल में बसे,
दिशाएँ श्रोत्र बन कर्ण में जा बसी |
औषधि देव रोम रोम में बस त्वचा में निवास किये
चन्द्र मन में, मृत्यु अपान वायु में हो नाभि में,
जल देव वीर्य होते हुए लिंग में वास करने लगे |
भूख बन आप स्वयम स्थान ग्रहण करें
सब देवों का आहार आप ही हैं,
देवों को अधिकाधिक भाग दे आपने कृतार्थ किया,
सृष्टि रच आप बोले
भूख प्यास इन्द्रियों के भोग के संग जो रहे
इन्द्रिय देव तृप्त रहें,

भूख प्यास तृप्त रहें ||

<u>प्रथम अध्याय तृतीय खंड</u>

<u>अन्न की रचना</u>
<u>श्लोक=१-३</u>

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ॥१॥
सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत ।
या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत् ॥२॥
तदेनत्सृष्टं पराङ्त्यजिघांसत्तद्वाचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम्
स यद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥३॥

हे स्वामी !
आपने बहुत विचार कर लोकपाल की रचना की,
भूख प्यास अन्न की रचना की |
पंचभूत संकल्प की क्रिया उत्पन्न करने के पश्चात,
क्रियाशील के पंचभूत का स्थूल रूप मूर्ति बनाई,
इन पंचभूत को अन्न नाम दिया,
देव भोग्य अन्न बना,
जिसे लोग अन्न कहें |
अन्न उत्पन्न होते ही मनुष्य के नास में लगा,
इसने माना मनुष्य के पास यह तुच्छ है,
पुरुष ने इसे वाणी से ग्रहण करने का
निष्फल प्रयत्न किया
वाणी से तो बस
अन्न नाम ले कर ही तृप्त हुआ जा सकता है |

<u>मन्त्र=४-६</u>
तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुं स यद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥४॥
तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषा ग्रहीतु
न् स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यद्दृष्ट्वा हैवानमत्रप्स्यत् ॥५॥
तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुं स यद्धैनच्छ्रोतेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥६॥

हे नाथ !

प्रयत्न किया नासिका से ग्रहण का तदुपरांत,
असफल हो हस्त द्वारा पकड़ा इसे,
नासिका से करता ग्रहण
तो बस सुगंध ले कर ही होता तृप्त |
हे दयानिधि !
तत्पश्चात आपने पकड़ने हेतु भेजा,
परन्तु न पकड़ सके,
पकड़ाया तो बस तृप्ति हेतु |
कर्ण द्वारा अन्न ग्रहण करना चाहा,
असफल रहा,
सुनने मात्र से तो तृप्ति नही होगी |

<u>मन्त्र =७-९</u>
तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुं स
यद्धैनत्त्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥७॥
तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुं स
यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥८॥
तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुं स
यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्वित्सृज्य हैवानमत्रप्स्यत् ॥९॥

हे देव
त्वचा से भी किया प्रयास
पर न हुई पूरी आस
स्पर्श से तो न बनेगी बात
अन्न को तो ग्रहण करना होगा|
मन से भी ग्रहण करना चाहा
कर न सका
मात्र चिंतन से तो क्षुदा न होगी समाप्त |
लिंग द्वारा भी चाहा की ग्रहण अन्न करूँ
संतृप्त बनूँ जग सारा त्याग कर
अपान से भी की कोशिश पर न कर सका ग्रहण
अपान वायु की सहायता से
मनुष्य ने मुख में धारण किया
यही सफल उद्यम हुआ
जीवन रक्षक सर्व हित है,
अंश प्राण वायु का है ||

<u>मन्त्र =१० -१२</u>

परमात्मा का देह प्रवेश

तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत् सैषोऽन्नस्य ग्रहो
यद्वायुरनायुर्वार् एष यद्वायुः ॥१०॥
स ईक्षत कथं न्विदं मद्दते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति ।
स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं यदि प्राणेनाभिप्राणितं
यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा
ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति
॥११॥
स एतमेव सीमानं विदर्यैतया द्वारा प्रापद्यत ।
सैषा विद्दतिर्नाम द्वास्तदेतन्नाऽन्दनम् ।
तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना
अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति ॥१२॥

हे प्रभु !
विचार कर इस विधि
रची आपने सृष्टि
पर सोच यह की आपके बिना
जग में कैसे हो तुष्टि?
आपके सहयोग बिना कैसे चले काम
आपके बिना जीवन तो अर्थ हीन
वाणी से बोल लेंगे, नैनो से देख लेंगे,
नासिका से सूँघ लेंगे, कान से सुन लेंगे
त्वचा से स्पर्श, मन से चिंतन,
अपान से अन्नग्रहण, लिंग से त्याग
करना सीख लिया फिर क्यों आप,
आप बिना कुछ नही रहेगा
अतः पग से मार्गदर्शन करें |
यह सोच हे ब्रह्म आपने देह चीर किया प्रवेश,
मनुष्य की सजीव देह में इस विधि किया वेश
विदीर्ण किया अतः विद्वातिद्वर कहाए
ब्रह्म प्राप्ति से ब्रह्म द्वार कहाए
तीन स्थान आपके,
तीन स्वप्न आपके,
तीन सर्व मणि से ये
प्रथम स्थान ह्रदय, द्वितीय परम धाम
ब्रह्माण्ड तीसरा प्रभु लूँ आपका नाम
स्थूल सूक्ष्म के कारण
तीन दशा स्वप्न रूप धर आप आओ |

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

मन्त्र=१३-१४
स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषदिति ।
स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत् । इदमदर्शनमिती ॥१३॥
तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम ।
तमिदन्द्रं सन्तमिंद्र इत्याचक्षते परोक्षेण ।
परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥१४॥

हे स्वामी !
हमने बहुत अचरज से जगत की रचना देखी
आस पास की सृष्टि देखी
जानता हूँ,
आप के सिवा कोई नही
जग रचियता
अंतर भी देखा कौन करता कौन भरता
जो जग में व्यापक है वही इश्वर आप हो
देखा प्रभु आपको परम रस में डूब डूब देखा
भाग्यवान हूँ मैं, चिंता विहीन हुआ
देख देख आपको परमानन्द मैं डूबा
सत्य देख देव सब छुप गए
देव छुप कर प्रकट करें सत्य सदा
इदं में दर मिल इंद्र बने
आप इस भांति पुरुषों में बसे ||

द्वितीय अध्याय

श्लोक १-३
तीन जन्म

ॐ पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति यदेतद्रेतः
तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः संभूतमात्मन्येवऽऽत्मानं बिभर्ति
तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ॥१॥
तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथा स्वमङ्गं तथा ।
तस्मादेनां न हिनस्ति । साऽस्यैतमात्मानमत्र गतं भावयति ॥२॥
सा भावयित्री भावयितव्या भवति । तं स्त्री गर्भं बिभर्ति ।
सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति ।
स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव
तद्भावयत्येषं लोकानां सन्तत्या ।
एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥३॥

हे परम पिता !
जीव सर्व प्रथम प्रकट होता
पुरुष के वीर्य रूप में,
यह तो है सब अंगो के तेज फलस्वरूप,
मानव देह का धारण यही से होता
स्त्री गर्भ में निरुपित हो यह जन्मता |
स्त्री मात्र को वीर्य आत्मामय बनाता
स्त्री के अन्य अंग का निर्माण भी होता वीर्य से,
स्त्री दर्द सहकर भी पालती पोसती है,
पति के आत्मस्वरूप वीर्य को अपने भ्रूण में |
गर्भवती स्त्री का पालन पोषण सब करें,
गर्भकाल में सब उसे संभाल करें,
प्रसव काल तक स्त्री का देह गर्भ में रहे,
जन्म पश्चात
पिता का कर्तव्य कि बालक की रक्षा करे |

मन्त्र =४-६
सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते ।
अथास्यायामितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति ।
स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म ॥४॥
तदुक्तमृषिणा गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति ।
गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ॥५॥
स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके
सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत् ॥६॥

हे देव !
पालन पोषण एवं विविध संस्कार पिता ही करे,
बालपन में उन्नति का उन्नत विकास करे,
बालरूप से इसप्रकार प्रथम जन्म हुआ तो दूसरा क्या है?
प्रभो बताएँ आप
पुत्र रूप में उत्पन्न बालक पिता की होता आत्मा,
पिता भी प्रतिनिधि रूप में सब कार्य करता,
जग सारा पिता पुत्र व्यवहार सौंपते,
पितृ ऋण से छुट जाये कैसे?
पिता पूर्ण आयु प्राप्त कर जाते जब
कर्म करते जन्म धरते इस प्रकार पाते तीसरा जन्म |
वामदेव ऋषि इस भांति कहें इस बात को,
गर्भ में ही प्राप्त हो ज्ञान ज्ञात हो,

अनेक जन्म देवों ने गर्भ में ही जाने
इन्द्रियरुप देव ने गर्भ में ही माने,
हज़ार लोह की देह जकड रखी पहले ही,
तोड़ जिसे मुक्त होते सभी,
ज्ञान प्राप्त करते
वामदेव ऋषि मात गर्भ से बोलते
शरीर को अपना मान दुःख सहते |
इस प्रकार वामदेव ने जन्म रहस्य कहा,
आत्मा तो नही देह ही जन्मति कहा,
देह छूटे जग छूटे,
कामना पूर्ण हो उस धाम गतमान हों,
सर्व कामना अमृत रूपी ही हो ||

तृतीय अध्याय

श्लोक=१-४
आत्मा कौन है
ॐ कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा ।
येन वा पश्यति येन वा शृणोति येन वा
गंधानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा
स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥१॥
यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् ।
संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिधृर्तिमतिर्मनीषा
जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति ।
सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवंति ॥२॥
एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा
इमानि च पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश
आपो ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव ।
बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि
च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वा गावः पुरुषा
हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च
यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने
प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ॥३॥
स एतेन प्राज्ञेनाऽऽत्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके
सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत् ॥४॥

हे नाथ !
आत्म-रहस्य बतायें आप,
कौन है आत्मा, आती कहाँ से जाती कहाँ

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

जीवात्मा बसी आपकी देह में,
जो सुनती है, संभालती है, सूँघती है,
बोलती है, स्वाद अस्वाद स्पष्ट करती है,
प्रभु इस आत्मा का रूप क्या है ?
हृदय से तीव्र मन है,
मन से देह है, जिसमे है,
शक्ति, ज्ञान शक्ति, शाशन शक्ति, पहचान शक्ति,
पदार्थों को जानने की शक्ति, विचार शक्ति,
मनन शक्ति, धैर्य शक्ति
चंचल वेगवान स्मरण संकल्प शक्ति,
मनोरथ, प्राण कामना, स्त्री इच्छा शक्ति,
सर्व शक्तिमान सामर्थ्यवान मन की प्रभु नाम शक्ति,
ज्ञान रूप प्रभु शक्ति के ही लक्षण हैं |
ब्रह्म हैं, उस से इंद्र, उस से प्रजापति,
फिर सारे देव, जल, वायु, आकाश, पृथ्वी,
अंदाज, स्वेदज, उद्राज, घोडा गाय आदि,
पुरुस से बनी दुनिया,
स्थावर, जंगम, पंखोवाले प्राणी भी जग में,
आपकी कृपा से सब समर्थ हैं,
ब्रह्माण्ड के ब्रह्म की ज्ञान शक्तियां
परम ज्ञान मय आप ही हो |
इस प्रकार ज्ञान मैंने किया प्राप्त,
जब देह छूटे,
परमधाम जाऊँ सदा,
दिव्य भोग पा कर अमृतमय होऊँ सदा ||

<u>||| तृतीय अध्याय समाप्त ||</u>

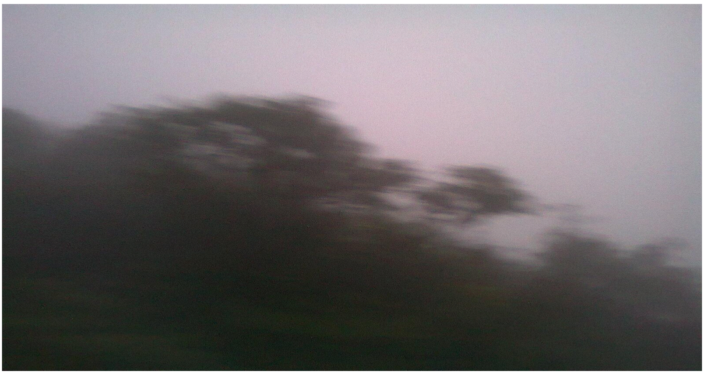

तैतिरीय उपनिषद

कृष्ण यजुर्वेद

<u>तैत्तिरीय उपनिषद –परिचय</u>

तैत्तरीयोपनिषदप्रमुख दस उपनिषदों में से एक है, यह कृष्ण यजुर्वेद से लिया गया है, १०८ उपनिषदों की श्रृंखला में यह सातवाँ है एवं सृष्टि की विभिन्न रचनाओं में ख़ुशी एवं सुख के विवरण को चित्रित करता यह उपोनिषद वैदिक काल के अंतिम भाग में रचा गया है, ६-७ शताब्दी ईशा पूर्व, आदि शंकराचार्य ने इसका भाष्य ११ सदी पश्चात् किया |जुर्वेद के तैत्तरीय आर्यक से उद्धृत इस उपनिषद में तीन भाग है एवं ३१ उपभाग | शिक्षवाली, में १२ उपभाग, जो शिक्षा के बारे में बताते हैं की किस विधि से वैदिक ग्रंथों को उच्चारित करना चाहिए, दुसरे भाग ब्राहमण वल्ली इसमें ९ उपभाग हैं यह ब्रहमानंद ज्यूँ ब्राहमण के कर्तव्य बुद्धि मन एवं अपेक्षाओं को बताता है, तीसरे भाग भृगु वल्ली में १० उपभाग हैं यह ऋषि भृगु द्वारा दिए गए उत्तर विशिष्ट ब्राहमणों को का संवाद है |

|| अतिथि देवो भवः || इसी उपनिषद से लिया गया है |
ब्रह्म ज्ञान ही मुख्य उद्देश्य है इस उपनिषद का, भाग को वल्ली कहा गया है, उपभाग को अनुवाक |
शान्तिपाठ में एक विशेष बात है पहली बार वायु को ब्रह्म कहा गया है, अथार्थ वायु में भी ब्रह्म हैं, पाँच संहिताओं का भी विवरण है |

प्रथम अनुवाक

शांति पाठ

ॐ शं नो मित्र: शं वरुनः शं नो भवत्वर्यमा |
शं नो इन्द्रो ब्रहस्पति | शं नो विष्णुरुक्रमः |
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो | त्वमेव प्रत्यक्षम ब्रह्मासि |
त्वमेव प्रत्यक्षम ब्रह्म वदिष्यामि | ऋतुम वदिष्यामि |
सत्यम वदिष्यामि | तन्मामवतु | तत्वक्तार्मवातु |
अवतु माम, अवतु वक्तराम |
ॐ शांति:,शांतिः शांतिः ||१||

हे अधिष्ठाता |
मेरे हितकर हों सब देव आप,
इंद्र , मित्र, वरुण, वृहस्पति, अर्यमा |
प्रत्यक्ष ब्रह्म विराजते
वायु देव आपमें, नमन करूँ आपको,
प्रभो, ग्रहण, भाषण, आचरण, सदा सत्य ही रहे,
ऋतू के देव ऋतू रूप में हमें रक्षा करें |
शांति दें, शांति दें, शांति दें, प्रभो ||

शिक्षा वल्ली / द्वितीय अनुवाक
ॐ शिक्षा व्याख्यास्यमः| वर्ण: स्वरः | मात्रा बलम | साम संतान: |
इत्युक्तः शिक्षाध्याय: |

हे नाथ !
अनुकरणीय सभ्य भाषा का ज्ञान हो
विद्या व्याकरण का भान हो,
वर्ण, संधि, स्वर, मात्राओं का शुद्ध अनुमान हो,
वर्णों का अभीष्ट उच्चारण हो,
गान शास्त्रीय समान हो,
वेद उच्चारण की शिक्षा मिले
कृपा आपकी रहे |

<u>शिक्षा वल्ली / तृतीय अनुवाक</u>
<u>श्लोक-१</u>
सह नो यशः | सह नो ब्रह्मवर्चसम |
अथात: संहिताया उपनिषदम व्याख्यास्यामः |
पञ्चस्वधिकरणेषु |
अधिलोकमधिज्यौतिषमधिविद्यम धि प्रजम्ध्यातमम
ता महासम्हिता इत्याचक्षते अथादिलोकम |
प्रथ्वी पूर्व रूपं | द्यौरुत्तर्रुपम |
आकाशः संधिः ||१||

हे प्रभु !
शिष्य आचार्य के
यश, ब्रह्म, वर्चस्व की वृद्धि करो आप,
पञ्च स्वाधिकार
लोक ज्योति प्रज्ञा विद्या अध्यात्म
की संहिता उपनिषद करते व्याख्या
भूमि, नभ, द्यौ, संधि उत्तर वायु, संयोजक रचित यह ग्रन्थ |

<u>श्लोक-२</u>
वायु संधानम | इत्याधिलोकम | अधाधिजौतिषम |
अग्निः पुर्व रूपं | आदित्य उत्तर रूपं | आपः संधि |
वैधुत: संधानम | इत्याधिजौतिषम | अथाधिविध्यम |
आचार्यः पूर्व रूपं ||२||

हे देव !
अग्नि है पूर्व रूप, सूर्य उत्तर रूप,
जल मेघ का अस्तित्व द्वय संधि रूप,
विद्युत् सेतु है इनकी संधि का
संधि है संधान ,
यही है ज्योति,
यही विषयक तत्व
मुझे प्राप्त हो |

<u>श्लोक-३</u>
अन्तेवास्युत्तर रुपम | विद्याः संधि | प्रवचन संधानम |
इत्यधिविद्यम | अथाधिप्रजम | माता पूर्व रूपं |
पितौत्तार्रुपम | प्रजा संधिः |प्रजनम संधानम |
इत्याधिप्रजम ||३||

हे प्रभु !
प्रथम वर्ण जो आते वे गुरु रूप हैं
उत्तरार्ध में लघु (शिष्य) रूप हैं.
दोनों के सामंजस्य से प्रकट होती विद्या
संधि का ज्ञान हो जिसे वही अस्तित्व संधान है,
यह विद्याक संहिता विषय इस उपनिषद का विधान है |
माता तो पूर्व रूप, पिता हैं उत्तर
दोनों की संधि
प्रजनन से उत्पन्न करती संतति,
प्रजा का यही विषय यही संहिता
उपनिषद का तत्व ज्ञान है |

<u>श्लोक-४</u>
अथाध्यात्मं | अधरा हनु: पूर्व रूपं |
उत्तरा हनु: उत्तर रूपं | वाक्संधिः | जिह्वा संधानम |
इत्याध्यतामम | इतिमा महासंगहिता |
य एवमेता महासंघिता व्याख्याता वेद |
संधियेते प्रजया पशुभि |
ब्रह्मवर्चसे नानादद्येने सुवग्येर्ण लोकेन ||४||

हे नाथ!
निचे का जबड़ा पूर्व ऊपर का उत्तर रूप
दोनों की संधि प्रकट करते वाक् स्वरुप
वाणी ही बनती ब्रह्मरूप,
जो शक्ति विलक्षण महान है |
यह आत्म विषयक तत्व उपनिषद के प्राण हैं |
इन पञ्च महान संहिताओं से जान
जीवन शांतिमय करूँ,
संतान, पशुधन, ब्रह्म, वर्चस, अन्य भोग प्राप्त करूँ
प्रुभु यही तो आपका गुणगान है |

<u>शिक्षा वल्ली / चतुर्थ अनुवाक||</u>
<u>श्लोक-१</u>
यश्छन्द्सामृषभि विश्वरूपः |
छन्दोभ्योऽध्यामुतातसमृभव |
स मेन्द्रो मध्य स्पर्नोतु |
अमृतस्य देव धारणों भूयासम |
शरीर में विचरणं | जिव्हा में मधुमतमा |

कर्णाभ्याम भूरी विश्रुवम |
ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया: पिहितः |
श्रुतं में गोपाय | श्रव्हंती वितंवाना ||१||

हे जग स्वामी !
ॐकार निसृत है वेदों से
पावन श्रेष्ठ अमृत सा
मेघ से संपन्न इंद्र करते कृपा
मृदु भाषी बनूँ, देह स्वस्थ हो,
कर्ण सुने तो कल्याण प्रद स्वर,
शुभ बोल याद रहें
कल्याण करूँ |

श्लोक-२
कुर्वाणाऽचीरमात्मन: | वासंगसि मम गावस्च |
अन्न्पाने च सर्वदा | ततो में श्रीयमावह |
लोमशाम पशुभि: सह स्वाहा | आ मा यन्तु ब्रह्मचारिणी: स्वाहा |
वि माऽऽयन्तु ब्रह्मचारिणी: स्वाहा |
प्र माऽऽयन्तु ब्रह्मचारिणी: स्वाहा |
दयायन्तु ब्रह्मचारिणी: स्वाहा |
शमायन्तु ब्रह्मचारिणी: स्वाहा ||२||

हे नाथ अधिष्ठाता !
समस्त खाद्य वस्तुएँ रहें उपलब्ध मुझे,
गौ सुख को प्राप्त करूँ,
वस्त्र, आभूषण, पशुधन का संवर्धन रहे,
अग्नि देव रखें कृपा सदा
ऋद्धि सिद्धि बनी रहे करूँ यज्ञ सर्वदा |
रखु ब्रह्मचर्य व्रत अक्षुण ,
पिपासु रहूँ ज्ञान का,
मन की चंचलता का हो दमन
विधान रहे शमन,
आहुति स्वाहा की करो स्वीकार
प्राप्त हो मुझे लक्ष्य अपार,
स्वीकार करें अंगीकार करें हे ब्रह्म एकाकार |

श्लोक-३
यशो जनेऽसानि स्वाहा | श्रेयां वस्यसो ऽसानि स्वाहा |
तं ता भग प्रविशानी स्वाहा | स मा भग प्रविश स्वाहा |

तस्मिन् तत्सहस्त्रशाखे निभ्गाह्म त्वयी मृजे स्वाहा |
यथाऽऽपः प्रवताऽऽयन्ति यथा मासा अहर्जरम |
एव मा ब्रह्मचारिणी: | धात्रायन्तु सर्वतः स्वाहा |
प्रतिवेशोऽसि प्र मा भाहि प्र मा पद्मस्च ||३||

हे देव!
कीर्ति बढे सर्वत्र सृष्टि में,
श्रेष्ठ धनार्जन हो,
अति शील रहूँ सब की दृष्टि में
आहुति स्वाहा की करो स्वीकार
प्राप्त हो मुझे लक्ष्य अपार |
ज्यूँ सब सरिताओं के जल का समापन उदधि में होता
काल मास संवत्सर समय के गर्भ में सोता
मैं भी ब्रह्मचर्य का पालन करूँ,
दैदीप्यमान हो जीवन
आपके ब्रह्म को प्राप्त करूँ |

<u>शिक्षा वल्ली / पंचम अनुवाक</u>
<u>श्लोक-१-३</u>
भूर्भुवः सुवरिती वा एतास्तिस्त्रो व्याहृतय: |
तासाम् ह स्मैताम चतुर्थां | महाचमस्य: प्रवेदयते |
मह इति | तत ब्रह्म: | स आत्मा | अंगान्यन्या देवता: |
भूरिति वा अयं लोक: | भू इत्यन्तिरिक्षम
सु वरित्यसो लोक: ||१||
मह इत्यादित्य: | आदित्येन वाव सर्वे लोका महियन्ते |
भूरिति वा अग्नि: | भुव इति वायु: | सुवरित्यादित्य: |
मह इति चन्द्रमा: | चंद्रमसा वाव |
सर्वाणि ज्योतिन्षि महियन्ते | भूरिति वा ऋच: |
भुव इति सामानि |
सुवृति यजूङषि ||२||
मह इति ब्रह्म | ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महियन्ते |
भूरिति वै प्राण: | भुव इत्यपान: | सुवरितीव्यान: |
मह इत्यन्नम | अन्नेन वाव सर्वे प्राण महियन्ते |
ता वा एतास्चतस्रस्चुतुर्ध | चतस्रश्रच्तश्रो व्याहृतय: |
ता यो वेद |
स वेद ब्रह्म: | सर्वेऽस्मै देवा वलिमाव्हन्ति ||३||

हे देवेश्वर !
महा चम् ऋषि पुत्र ने सर्व प्रथम गायत्री जाना

ॐ भूर्भुव: स्व: को पहचाना ,
भू एवं भुव स्व:की आत्मा चतुर्थ व्याहृति ब्रह्म से जान
सूर्य जग प्रकाश कर्ता को मान |
भू: अग्नि व्यव्हार में है,
भुव: वायु और स्व: आदित्य प्रसार में है,
चन्द्र मन के देव दे रहा ज्योति सत्य की,
भू: भुव: ऋग्वेद सम, स्व: मह यजुर्वेद ब्रह्म हैं,
आपका सर्व तत्व वेदों से उद्गम्य है |
भू प्राण है भुव अपान स्व व्यान
मह अन्न इन चार वायु से प्राण ही प्राण है,
चार से सोलह व्य्हृति व् भेद हैं,
मुझे इनका ज्ञान करायें प्रभु,
पाऊँ आपसे भेंट ||

<u>शिक्षा वल्ली = षष्ठ अनुवाक</u>
<u>श्लोक-१-२</u>
स य एषोंऽतरह्रदय आकाश: | तस्मिन्नयम पुरुषो मनोमय: |
अमृतो हिरण्यमय: | अन्तरेण तालुके | य एष स्तन इवावलम्बते |
सेंद्रयोनी: | यत्रासो केशान्तो विवर्तते | व्यपोहं शीर्षकपाले |
भुरित्य्ग्नौ प्रतितिष्ठिति |
भुव इति वायौ ||१||
सुवरित्यादित्ये | मह इति ब्रह्मणी | आप्नोति स्वराज्यम |
आप्नोति मनसस्प्तिम | वाकपतिश्चक्षुष्पति: |
श्रोत्रपतिविज्ञान्पति: | एतततो भवति | आकाश शरीरं ब्रह्म |
सत्यात्म प्रानारामम मन आनंदम |
शंतिसमृद्धममृतम |
इति प्राचीनयोग्योपासस्व ||२||

हे अविनाशी !
ह्रदय अंतर में अनंतर आकाश है,
ज्योतिरूप प्रभु आपका ही प्रकाश है,
प्रभु अविनाशी आप विराजते विशुद्ध अभारूप में,
मनोमय महिमा अमित आपकी प्रभारूप में |
दो तालुओं के मध्य जो कंठ है,
ब्रह्म रंध्र मस्तक कपोल मध्य स्थित है
यहाँ से निसृत सुषुम्ना मूल ब्रह्म की
अन्तकाल में अग्नि सूर्य ब्रह्म गति मिलती |
जो ब्रह्म स्थित रह निज स्वामी है बनता
वह आपकी विशेषता भूल अहम का शाषक बनता

मुझे ब्रह्म के स्वामी मन का विजेता बनाएँ,
मन वाणी नेत्र श्रोत्र इन्द्रियों का ज्ञाता बनाएँ |
हे ब्रह्म! आप गगन सम व्यापी
एकमात्र आपकी सत्ता ही है
समस्त इन्द्रियों का शान्तिकरण
आपकी सन्निधि में होता
मुझे अमृत गमय बनाएँ प्रभु ||

<u>शिक्षा वल्ली = सप्तम अनुवाक</u>
प्रुथ्विव्यन्तरिक्षम द्यौदिशोऽवान्तर्दिषा: |
अग्निर्वायुरादित्य्स्चन्द्रमा नक्षत्राणि |
आप औषधयो वनस्पतय आकाश आत्मा | इत्यदिभूत म |
अथाध्यात्मं | प्राणों व्यानोऽपान उदान: समान: |
चक्षु: श्रोत्रं मनो वाक त्वक |
चर्म मान्सग स्नावस्थी मज्जा |
एतदधिविधाय ऋषिरवोचत | पांकनतम व इदं सर्वं |
पाँकतैनेव पाँकतंग स्पर्णतिती ||

हे स्वामी !
भूमि, गगन, अंतरिक्ष,
दसो दिशाएं, आवांतर दिशाएं,
अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र,
गगन, जल, औषधि, पञ्च इन्द्रियां,
प्राण एवं समस्त पदार्थ
चर्म, मांस, मज्जा, स्नायु,
नेत्र, कर्ण, वाणी, मन, सब
पंक्दंत हैं, ऋषि मुनि उसे पूर्ण करें
प्रभु निश्चय ही आप इस विधि पवित्र करें ||

<u>शिल्षा वल्ली = अष्टम अनुवाक</u>
ओमिति ब्रह्म | ओमितिद: सर्वं |
ओमित्येतदनुकृतिह्ल स्म वा अप्यो श्रावेत्याश्रावयन्ति |
ओमिति सामानि गायन्ति | ॐ शोमिति शस्त्राणि शं सन्ति |
ओमित्यध्वर्यु: प्रतिगर प्रतिगृणाति | ओमिति ब्रह्मा प्रसौति |
ओमित्य्गनिहौत्रमनुजानाति |
ओमिति ब्राहमण: प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्न्नवानीति |
ब्रह्मैवोपाप्न्नोति ||

हे देव !

यजुर्वेद के ज्ञाता ऋषि ने जब बतलाया,
ॐ का अर्थ बड़ा विषम पाया,
ॐ ही ब्रह्म ,ॐ ही विश्व, ॐ ही निज अनुकृति,
ॐ सिद्ध है,
शुभ कर्मो के अध्ययन में
यज्ञ के होत्र में
यह ऋद्धि प्रदाता है,
ऋत्विक अध्वर्यु ऋषि जो है यजुर्वेद के ज्ञाता,
यजुर्वेद की लालसा से पूछा तो बताया
ॐ सर्व प्रथम वर्ण है वेदों का ||

<u>शिक्षा वल्ली=नवम अनुवाक</u>
ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च |
सत्यम च स्वाध्यायप्रवचने च |
तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च |
दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च |
शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च |
अग्नियश्च स्वाध्यायप्रवचने च |
अग्निहोत्र च स्वाध्यायप्रवचने च |
अतिथ्य्श्च स्वाध्यायप्रवचने च |
मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च |
प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च |
प्रजन्नश्च स्वाध्यायप्रवचने च |
प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च |
सत्यमिति सत्यवचा राथितर: |
तप इति तपोनिती: पौरुशिष्ठी:|
स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्य: |
तद्धि तपस्तद्धि ताप: ||

हे जगत्राता !
स्वाध्याय प्रवचन से ज्ञात हुआ
श्रेष्ठ हैं ये सब
वेदादि अध्यन, मानवोचित कर्म-धर्म,
शम दम नियम तप अग्निहोत्र
कुटुंब प्रजनन कर्म
धर्माचरण, सत्य भाषण,
तप तो सर्वश्रेष्ठ है
नित्य तप करने वाले मुनि,
उनका रात्रिसूक्त मत ही श्रेष्ठ है ||

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

<u>शिक्षावल्ली दशम अनुवाक</u>
अहम वृक्षस्य रेरिवा | कीर्ति: पृष्ठं गिरिरेव |
उर्ध्व पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि | द्रविडम सर्व्चसम |
सुमेध अमृतोक्षित: | इति त्रिशंको वेदानुवचनम ||

हे स्वामी !
यह जग एक वृक्ष है जिसका उच्छेदक आप हैं,
रवि सम अन्नोत्पादक शक्ति
पर्वत सम कीर्ति आपकी
अमृत सम अतिशय पावन आप,
ज्योतिसम सकारात्मक योग आप,
अमृत सिंचित स्वुत्पन्न
ज्ञान का मूल श्रोत आप हैं ||

<u>शिक्षावल्ल एकादश अनुवाक</u>
<u>श्लोक-१-४</u>
वेदमनुच्या चार्योंतेवसिन्मनुशास्ति |
सत्यम वद | धर्म चर | स्वाध्यायान्मा प्रमद: |
आचार्याय प्रियम धनमाहृत्य प्रजातन्तुम मा व्यवच्छेत्सी: |
सत्यान्न प्रमदितव्यम |
स्वाध्याय प्रवाचनाभ्याम न प्रमदितव्यम ||१||
देवपितृकार्यभ्याम न प्रमदितव्यम | मातृ देवो भव |
पितृ देवो भव | आचार्य देवो भव | अतिथि देवो भव |
यान्यनवद्यानि कर्माणि | तानि सेवितव्यानि | नो इतिरानि |
यान्यस्माकम सुचरितानि |
तानि त्वयोपास्यानि ||२||
नो इतिराणी | ये के चारुमच्छेर्यान्ग्सो ब्रह्मणा: |
तेषा त्वयाऽऽसनेन प्रश्चसित्व्यम | श्रद्धया देयम |
अश्रद्धयाऽदेयम | श्रिया देयम | ह्रिया देयम | भिया देयम |
संविदा देयम |
अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृतविचिकित्सा वा स्यात ||३||
तथा तत्र ब्रह्मणा: सममर्शिन: | युक्ता आयुक्ता: |
अलुक्षा धर्मकामा: स्यु: | यथा ते तेषु वर्तेरन |
तथा तत्र वर्तेथा: | अथाभ्याख्यातेषु |
तथा तत्र ब्रह्मणा: सममर्शिन: | युक्ता आयुक्ता: |
अलुक्षा धर्मकामा: स्यु: | यथा ते तेषु वर्तेरन |
तथा तेषु वर्तेथा: | एष आदेश: | एष उपदेश: |
एषा वेदोप्निषत | एत दनुशासनं | एवमुपसित्व्यम |

एवमु चैतदुपास्यम ||४||

हे प्रभो !
जो शिष्य है रहते गुरुवर के आश्रम में,
गुरुवर उन्हें करते शिक्षित ,
सत्य वचन,
स्वाध्याय, धर्माचरण, की शिक्षा मिलती रहे,
हे देव् पितृ, मात, आचार्य, सब चलें धर्म पथ पर,
वेदों में अध्यन रूचि रखूँ मैं सदा |
माता पिता हों या हों आचार्य अतिथि
सब रहे देव सदृश
निर्दोष सात्विक आचरण और
श्रेष्ट कर्मों का ज्ञान हो,
दान, श्रद्धा, सेवा, शुभ. विचार रहें,
दंभ हीन विनम्र निष्काम
वृति मुझमे प्रधान हों |
कर्तव्य मार्ग में कोई दुविधा न रहे,
युक्ति विधि से मार्ग दर्शन मिले
प्राप्त कुशल गंतव्य हो,
दोषी से कैसा व्यवहार हो,
निर्देश दें आप प्रभु
श्रेष्ठ आचार्य बन ||

<u>शिक्षावल्ली - द्वादश अनुवाक</u>
ॐ शं नो मित्र: शं वरुनः शं नो भवत्वर्यमा |
शं नो इन्द्रो ब्रहस्पति | शं नो विष्णुरुक्रमः |
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो | त्वमेव प्रत्यक्षम ब्रह्मासि |
त्वमेव प्रत्यक्षम ब्रह्म वदिष्यामि | ऋतुम वदिष्यामि |
सत्यम वदिष्यामि | तन्मामवतु | तत्वक्तार्मवातु |
अवतु माम, अवतु वक्तराम |
ॐ शांति:,शांतिः शांतिः ||१||

हे अधिष्ठाता |
मेरे हितकर हों सब देव आप,
इंद्र , मित्र, वरुण, वृहस्पति, अर्यमा |
प्रत्यक्ष ब्रह्म विराजते
वायु देव आपमें, नमन करूँ आपको,
प्रभो, ग्रहण, भाषण, आचरण, सदा सत्य ही रहे,
ऋतू के देव ऋतू रूप में हमें रक्षा करें |

शांति दें, शांति दें, शांति दें, प्रभो ||

<u>ब्रह्मानंद वल्ली = तैत्तिरीयोपनिषद</u>

<u>||शान्ति पाठ||</u>
ॐ सह नाववतु | सह नो भुनक्तु | सह वीर्य करवावहै |
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै |
ॐ शांत: शांति: शांति: ||

हे प्रभु !
अति शक्तिशाली बनूँ गुरु शिष्य सह,
रक्षा करें प्रभु, उचित खाद्य को ग्रहण करूँ,
पालन करें,
दोनों की शिक्षा अध्यन को विशेष एवं शुद्ध करें,
द्वेष हो समाप्त, स्नेह हो प्राप्त,
त्रिविध ताप का हो नाश ||
मन शांत हो, शांत हो , शांत हो ||

<u>ब्रह्मानंद वल्ली -प्रथम अनुवाक</u>
ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम | तदेषाऽभ्युक्ता |
सत्यम ज्ञानमनन्तं ब्रह्म | यो वेद निहितं गुहायाम परमे व्योमन |
सोअश्नुते सर्वान कामान सह | ब्रह्मणा विपश्चितेति ||
तस्माद्वा एतास्मादात्मन आकाश: संभूत: | आकाशाध्वायु: |
वायोरग्नि: | अग्नेराप: | अदभ्य: पृथिवि |
पृथ्विया औषधय: | औषधिभ्योऽनन्म | अन्नात्पुरुष: |
स वा एष पुरुषोअन्नर्समय: |
तस्येदमेव शिर: |
अयं दक्षिण: पक्ष: | अयमुत्तर: पक्ष: |
अयमात्मा | इदम पुच्छं प्रतिष्ठा |
तदप्येष श्लोको भवति ||१||

हे परमेश्वर !
विशुद्ध ब्रह्म ज्ञानी ज्यूँ ब्रह्म को प्राप्त कर लेते,
सत्यस्वरूप ज्ञान रूपी अनादि अनंत ब्रह्म को,
स्थित हो आप हृदय रूपी गुहा में गगन से व्यापक
तत्वग्य हो, महिमा न कहीं जाय,
मुझे भी ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो |
प्रथम ब्रह्म से नभ तत्व, फिर अग्नि, वायु, जल,
भूमि, आदि प्रकट हूए क्रमशः

तत्पश्चात औषधि अन्न मानव अन्न रसमय मूल ,
पक्षी, मानव अंग-प्रत्यंग उत्पन्न हुए ||

<u>ब्रह्मानंद वल्ली -द्वितीय अनुवाक</u>
अन्नाद्वे प्रजा: प्रजायन्ते | या: काश्च पर्थिवीं श्रीता: |
अथ: अन्नेनैव जीवन्ति | अथैन्दपि यत्यन्तत: |
अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठं | तस्मात् सर्वौषधमुच्यते |
अन्नाद भूतानि जायन्ते | जातान्न्यन्नैन वर्धन्ते |
अद्यतेअति च भूतानि | तस्माद्न्म तदुच्यत इति |
तस्माद्वा एतस्माद्न्न रस्मयात | अन्यौतर आत्मा प्राणमय: |
तेंनैष पूर्ण: | स वा एष पुरुषविध एव |
तस्य पुरुषविधताम | अन्व्यम पुरुषविध: |
तस्य प्राण एव शिर: | व्यानो दक्षिण: पक्ष: |
अपान उत्तर: पक्ष: | आकाश आत्मा |
पृथिवि पुच्छ्म प्रतिष्ठा | तदप्येष श्लोको भवति ||

हे नाथ !
यह अन्न सभी प्रजा वासियों
सभी भूलोक वासियों
को रखे जीवित,
अंतत: अन्न में ही निमग्न होते,
सर्व औषधियों में,
यह ब्रह्म रूपी अन्न विद्यमान है,
अतः अन्न प्राणी को , प्राणी अन्न को
एक दूसरे पर आश्रित हैं |
यह अन्नमय स्थूल देह भिन्न सूक्ष्म देह से,
अनुगत है पुरुष विधा
यह विधा अनुरूप भी है अभिन्न भी है
खग रूप कल्पना उड़ती सदा
पुच्छ्ल तारा सी धरा प्राण हैं
दाहिने व्यान , बाएं अपान,
पंख नभ के आत्मा रहें ||

<u>ब्रह्मानंद वल्ली-तृतीय अनुवाक</u>
प्राणं देवा अनु प्राणन्ति | मनुष्या: पशवश्च ये |
प्राणों हि भुतानामायू: | तस्मात् सर्वायुषमुच्यते |
सर्वमेव त आयुर्यन्ति | ये प्राणम ब्रह्मोपासते |
प्राणों हि भुतानामायू: | तस्मात् सर्वायुषमुच्यत इति |
तस्यैष एव शारीर आत्मा | य: पूर्वस्य |

तस्माद्वा एतस्मात प्राणमयात | अन्योंतर आत्मा मनोमय: |
तेनैष पूर्ण: | स वा एष पुरुषविध एव |
तस्य पुरुषविधताम | अन्व्यम पुरुषविध: |
तस्य यजुरेव शिर: | ऋगदक्षिण: पक्ष: | सामोत्तर: पक्ष: |
आदेश आत्मा | अर्थ्वान्गिरस: पुच्छम प्रतिष्ठा |
तदप्येष श्लोको भवति ||

हे स्वामी !
प्राण ही देव हैं, प्राण ही आधार,
मनुष्य पशु विश्व के कर्णधार,
प्राण जीवन, प्राण आयु, प्राण प्राणाधार,
आपका ही रूप प्रभु प्राण
जानूँ, उपासना करूँ प्राण की,
मुझे तत्वज्ञ बनाएँ,
अमर प्राण के ब्रह्म रूप आप|
मन पूरित पुरुष अति भिन्न है उस प्राणमय से,
मनोमय ही होते प्राण मय वे अभिन्न हैं,
खग सी कल्पना करूँ तो,
यजु से मस्तक,
ऋग एवं साम से दोनों पंख हैं,
अर्थव के मन्त्र है पूँछ
और आधार असंख्य है,
प्रभु मुझे दे आधार कृपा करें ||

<u>ब्रह्मानंद वल्ली - चतुर्थ अनुवाक</u>
यतो वाचो निर्वतंते | अप्राप्य मनसा सह |
आनंन्दम ब्राह्मणों विद्वान् | न विभेति कदाचनेति |
तस्यैष शारीर आत्मा | य: पूर्वस्य |
तस्माद्वा एत्स्मान्मनोमयात | अन्योंतर आत्मा विज्ञानमय: |
तेनैष पूर्ण: | स वा एष पुरुषविध एव |
तस्य पुरुष विधताम |
अन्वय पुरुष विध: | तस्य श्रध्दैव शिर: |
ऋतं दक्षिण: पक्ष: |
सत्यमुत्तर: पक्ष: | योग आत्मा | मह: पुच्छम प्रतिष्ठा |
तदप्येष श्लोको भवति ||

हे ब्रह्मात्मन !
कोई भी नही पहुँच सकता आप तक,
ये जो मन है, सहित

इन्द्रियों के, वाणी के,
आपके ब्रह्मत्व में स्थित वास्तविकता तक,
मुझे आपका भान हो,
ब्रह्म का ज्ञान हो,
कदाचित भी भयभीत न रहूँ
मन एवं देह दोनों
आपमें प्रणित हों |
मन के प्राण में जो आत्मा है,
सदैव विज्ञानमय है यह
पुरुष के विविध आकृति से अनुगत
यह आत्मा स्थित हो अनवरत
सत्य आचरण
विशुद्ध पंख दोनों,
श्रद्धा हैं मस्तक
इस खग रूप में
आत्मा मध्य भाग है,
आधार यह अनुपम है .
बस यूँ ही आत्म ज्ञान मिलता रहे ||

<u>ब्रह्मानंद वल्ली-पंचम अनुवाक</u>
विज्ञानं यज्ञं तनुते | कर्मणि तनुते अपि च |
विज्ञानं देवा सर्वे: | ब्रह्म ज्येष्ठं मुपासते | विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद |
तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति | शरीरे प्राप्मनो हित्वा |
सर्वां कामन्समस्नुत इति | तस्यैष एव शारीर आत्मा |
य: पूर्वस्य | तस्माद्वा एतास्माद्विज्ञानमयात |
अन्योंतर आत्माऽऽनंद्मय: | तेनैष पूर्ण: |
स वा एष पुरुषविध एव | तस्य पुरुषविधताम |
अन्व्यम पुरुष विध: | तस्य प्रियमेव शिर: | मोदो दक्षिण: पक्ष: |
प्रमोद उत्तर: पक्ष: | आनंद आत्मा | ब्रह्म पुच्छम प्रतिष्ठा |
तदप्येष श्लोको भवति ||

हे नाथ !
विज्ञान है जो सब यज्ञों का, कर्मों का विस्तारक,
मुझे समस्त देवों के संग बहु रूप से
विज्ञान का साधक बनाओ,
प्रमाद एवं पाप विहीन बनाओं
ताकि विज्ञान का ज्ञान प्राप्त कर सकूँ,
मुझे इस दिव्यता के भोग का अधिकारी बनाओ |
यह विज्ञानमय जीवात्मा आपसे भिन्न है,

पुरुष आकृति जो अनुगत है,
आपसे अनुरूप है अभिन्न है,
खग रूप में जो
मस्तक है वह तो आनंद है,
पुच्छ प्रतिष्ठा है आप ब्रह्म स्वरुप की
मोड़ है बाएं पंख, प्रमोद दाहिने पंख
आप अगम्य रूप से कृपा करें ||

ब्रह्मानंद वल्ली-षष्ठ अनुवाक
असनैव स भवति | असद्ब्रह्मेति वेद चेत |
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद | संतमेनम ततो विदुरिती |
तस्यैष एव शारीर आत्मा | य: पूर्वस्य |
अथातोऽनुप्रश्ना: | उताविद्वान्मुम लोकं प्रेत्य |
कश्चन गच्छतिऽऽऽऽ....उ |
आहो विद्वान्मुम लोकं प्रेत्य कश्चित्मश्नुताऽऽऽ,,,उ | सोऽकामयत |
बहु स्याम प्रजायेयेति | स तपोअतप्यत | स तपस्तप्त्वा |
इदं सर्वंसृजत | यदीदम किंच | तत्सृष्टवा |
तदेवानुप्राविशत | तदनुप्रविश्य | सच्च त्याच्चाभवत |
निरुक्तं चानिरुक्तं च | निलयनम चानिल्यनम च |
विज्ञानं चाविज्ञानं च | सत्यम चानृतं च सत्यम भवत |
यदिदं किंच | तत्सत्यमित्यचक्षते |
तदप्येष श्लोको भवति ||

हे स्वामी !
आप ब्रह्म स्वरुप नास्ति , असत, हैं
यही भाव जिसमे प्रधान रूप से है,
उसकी वृति, आचरण, कर्म तदनुसार ही हैं,
अगर मैं सोचूँ कि आप हैं, सत हैं,
आस्तिक रूप से मेरे भाव में हैं
निश्चित मैं एक दिन आपको
प्राप्त करूँगा |
देह की अंतर आवर्ती आत्मा हैं आप,
ब्रह्म हो, आत्म भू आनंद हो, आनंद अंतरात्मा हैं,
शरीर एवं शरीर का भेद
यही विशेष रूप से जानने योग्य है,
आप अंतर्यामी हैं यह तुलना भी
सोचना मिथ्या है,
मुझे देह रहस्य बताएँ |
सोचता हूँ ब्रह्म है भी नही

परलोक में विज्ञाता ब्रह्म का
ज्ञाता है कि नही,
अविज्ञाता भी क्या परलोक में प्राप्त है
इस सत्य या असत्य तथ्य को जानने का इच्छुक हूँ |
ब्रह्म रूप एक हैं आप,
अनेक रूप में हैं प्रकट विस्तृत होते.
सृष्टि को भी संवर्धित करते ले संकल्प
अर्चना अनंतर आपकी
आप बसते सृष्टि में हैं अगम्य
जड़-चेतन,
आश्रय-अनाश्रय
ऋत-अनृत
सब आप हो ब्रह्म रूप में आप हैं ||

<u>ब्रह्म आनंद वल्ली – सप्तम अनुवाक</u>
असद्वा इदमग्र आसीत | ततो वै सद्जायत |
तदात्मानं स्वयमकुरुत |
तस्मात्त्सूकृतमुच्यत इति |
यद्वै तत सुकृतम | रसो वै स: |
रसं ह्मेवाह्यम लब्ध्वाऽऽनंदी भवति | को ह्मेवान्यात्क: प्रान्यात |
यदेष आकाश आनंदों न स्यात |
एष ह्मेवाऽऽनंद्याति |
यदा ह्मेवैष एतास्मिन्दृश्ये अनात्म्येअनिरुकतेअनिलयनेअभयं |
प्रतिष्ठं विन्दते | अथ सोअभयं गतो भवति |
यदा ह्मेवैष एतस्मिन्नुदरमंतरम कुरुते |
अथ तस्य भयम भवति | तत्वेव भयम विदुषोऽमंवानस्य |
तदप्येष श्लोको भवति ||

हे स्वामी !
पूर्व में अव्यक्त यह जड़-चेतन जगत था,
जब था अव्यक्त तभी प्रकट हुई सृष्टि,
ब्रह्म ने स्वयम को रचा जड़ चेतन अवस्था में,
सुकृत तब जग ने आपको कहा |
हे सुकृत!! ब्रह्म रस आनंदमयरूप
जीवात्मा से अनूप सम्बन्ध
विशाल गगन सा मुदितमय ब्रह्म
प्राण क्रिया को संचारित करता |
व्याकुल जीवात्मा अगम्य ब्रह्म को
अनुपम अगोचर वैदेही

परम आश्रय दाता ब्रह्म रूप स्वामी आप
मैं निर्भय हो ब्रह्म स्थित इस लाभ को वरण करूँ,
शोक भय से परे अभय पद को प्राप्त करूँ|
मैं जीवात्मा किंचित भी न रहूँ दूर ब्रह्म से
जन्म मृत्यु रूपी भय से दूर रहूँ|
मुझ अज्ञानी को उस भय से ग्रसित न कर
मुझे अभिमानी न बना जन्म मृत्यु मुझमे निहित न हो ||

<u>ब्रह्म आनंद वल्ली-अष्टम अनुवाक</u>
<u>श्लोक-१</u>
भीषाऽस्माद्वात: पवते | भीषोदेति सूर्य: |
भीषाऽस्माद्ग्निश्चेंद्र्श्च | मृत्युर्धावति पंचम इति |
सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति |
युवा स्यात्साधूयुवाऽध्यायक: |
आशिष्ठो दृधिश्ठो बलिष्ठ: |
तस्येयं पृथिवि सर्व वितस्य पूर्णा स्यात |
स एको मानुष आनंद: | ते ये शतं मानुषा आनंदा: ||१||

हे नाथ !
जन्म मृत्यु के भय से पवन सूर्य सब चलते
अग्नि इंद्र संचालित होते, सूर्य उदित अस्त होते
ब्रह्म स्वरुप नाथ आप ही संचालक हैं नियामक हैं
निज धर्म अनुसार सब रचते |
युवा शक्ति में असाधारण आचरण श्रेष्ठ हों,
वेद केज्ञान से कुशलता ,धन धान्य श्री भी मिले,
इन्द्रियां दृढ़ हों, अंग बलिष्ठ हों,
आनंद की मीमांसा में श्रेष्ठतम ज्ञान हों |

<u>श्लोक-२</u>
स एको मनुष्य गंधार्वाणामानंद: | श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य |
ते ये शतं मनुष्य गंधार्वाणामानंदा: |
स एको देव गंधार्वाणामानंद: | श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य |
ते ये शतं देवगंधार्वाणामानंदा: |
स एक: पितृणाम चिरलोकलोकानामानंद: |
स एक आजानजानाम देवानामानन्द: ||२||

हे परमेश्वर !
मनुष्य,गंधर्व लेते जो आनंद
श्रोत्रिय विज्ञ को सहज ही प्राप्त वह स्वभाव से,

ऐसे सौ आनंद मनुज गन्धर्वों केसमान हैं
देव गन्धर्वों के एक सुख के,
यह विमल निस्पृह सुख
मिले सात्विक श्रुत विज्ञ को
जो है सहज संभाव्य प्राप्त वेदग्य को |
शत सुख देव गन्धर्वों के
करते नही आसक्त
पितृ लोक के पितरों को
ये विज्ञ आनंद स्वतः प्राप्त करते |
अजानाज नमक सुख देवों का आनंद है
उन्हें लोको के भोगों की इच्छा नही
श्रोत्रिय सिद्ध आनंद अनुभूत करते |

<u>श्लोक-३</u>
श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य |
ते ये शतं आजानजानाम देवानामानन्दः |
स एकः कर्मदेवानाम देवानामानन्दः |
ये कर्मणा देवान्पियंती | श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य |
ते ये शतं कर्म देवानां देवानामानन्दः |
स एको देवानामानन्दः | श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य |
ते ये शतं देवानामानन्दः | स एक इंद्रस्याऽऽनन्दः ||३||

हे प्रभु !
आजानाज तो देव आनंद हैं,
यह आनंद देवों के शत आनंद सम है,
जो विरत हैं, वेदज्ञ श्रोत्रिय हैं
ऐसे सैकड़ों आनंद उन्हें मिलते हैं |
जो कर्म देवों के शत आनंद है
सौ सुख से बढ़कर यह एक है
अमर होकर भी जो सुख आनंद मिले
उसकी भी चाह नही
अज्ञ तो नही की सहज प्राप्य को प्राप्त करूँ |
जो सौ आनंद देवों के वर्णित हैं,
ऐसे सौ सुख इंद्र के एक आनंद के बराबर है
परन्तु यह सुख भी वेदज्ञ को विचलित नही करते
मुझे सहज सुख प्राप्त हो
सर्वग्य बनूँ जानूँ आपको |

<u>श्लोक-४</u>

श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य | ते ये शतमिन्द्रास्याऽऽनंदा: |
स एको वृहस्पतेरानंद: | श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य |
ते ये शतं वृहस्पतेरानंदा: | स एक: प्रजपतेरानंद: |
श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य |
त ये शतं प्रजपतेरानंदा: |
स एको ब्रह्मण आनंद: | श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य ||४||

हे प्रभु !
यह जो इंद्र का आनंद है जग में,
सौ इंद्र आनंद सम एक आनंद बृहस्पति को है,
जो जीव बृहस्पति के सुखों में भी निस्पृह विरल रहे,
वह वेद तत्व ज्ञाता सब सुखों को सहज प्राप्त करता |
इसी प्रकार बृहस्पति के सौ आनंद
प्रजापति के एक आनंद सम
जो परम श्रोत्रिय वेद ज्ञाता होते वे
पाकर सुख प्रजापति का भी सरल निस्पृह ही रहते |
सौ सुख प्रजापति के एक सुख ब्रह्मा के
समकक्ष हैं सुख राशि आनंद,
ऐसे वेदज्ञ परम आनंद से विरत ही रहते,
निष्कामी बनूँ मैं प्रभु कृपा कीजिये,
ऐसे आनंद मुझे सहज मिलते ही रहें |

<u>श्लोक-५</u>
य यश्चाय्म पुरुषे | यश्चासावादित्ये | स एक: |
स य एवंवित | असम्माल्लोकात्प्रेत्य |
एत मन्न्मयमात्मानमुपसंग्क्रामति |
एतम प्राणमयमात्मानमुपसंग्क्रामति |
एतम मनोमयमात्मानमुपसंग्क्रामति |
एतम विज्ञानमयमात्मानमुपसंग्क्रामति |
एतम आनंदमयमात्मानमुपसंग्क्रामति |
तदप्येष श्लोको भवति ||५||

हे परमात्मा !
आप मुझमे, आदित्य में, सब में एक ही हैं,
एकमेव ब्रह्म आप अंतर्यामी ब्रह्म
बसते नित्य आनंद में,
आप अन्न, प्राण, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय,
तत्वज्ञ हैं
आप क्रमशः मुझे प्राप्त हों ||

ब्रह्मानंद वल्ली-नवम अनुवाक
यतो वाचो निवर्तन्ते | अप्राप्य मनसा सह |
आनंदम ब्राह्मणों विद्वान् |
न विभेति कुतश्चनेति |
एतंह: वाव न तपति |
किमहं साधू नाकरवम | किमहं पापमकरवमिति |
स य एवं विद्वानेते आत्मानम स्पृणुते |
उभे ह्मेवैष एते आत्मानं स्पृणुते | य एवं वेद |
इत्युपनिषत |

हे स्वामी !
मन सहित वाणी भी अप्राप्य यहाँ
विद्वान् ब्रह्मज्ञ को जिसे प्राप्य आनंद
फिर भय क्यों हो,
सर्वदा निर्भय, संताप मुक्त रहूँ मैं
ब्रह्म ज्ञान से युक्त रहूँ मैं,
मुझे अभय दान दिजिये |
तत्वज्ञ सात्विक वृति रहे सदा
दुःख सुख सम भाव रहे
पाप-पुण्य से परे रहूँ
लोभ,भय,जीवन मृत्यु संताप, मोह से दूर रहूँ,
तत्वज्ञ बन आत्मा की रक्षा करता रहूँ सदा ||

भृगु वल्ली- तैत्तिरीय उपनिषद

प्रथम अनुवाक
भृगुर्वे वारुनि: | वरुणम पितरमुपससार |
आधीहि भगवो ब्रह्मेति | तस्मा एतत्प्रोवाच |
अन्नम प्राणम चक्षु: श्रोत्रं मनो वाचमिति |
तं होवाच | यतो व इमानि भूतानि जायन्ते |
येन जातानि जीवन्ति |
यत्यप्रयंत्यभिसंविशंति | तद्विजिग्यासस्व | तद ब्रह्मेति |
स तपोअतप्यत | स तपस्तप्त्वा ||

हे स्वामी !
जब वरुण पुत्र भृगु ने की कामना ब्रह्मत्व की,
इन्द्रियां द्वार है मार्ग की बतलाया वरुण देव ने,
इन इन्द्रियों से जीते प्राणी सर्जित करते प्रयाण हैं
ब्रह्म ही प्राण है यह ज्ञान दिजिये |

द्वितीय अनुवाक

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात | अन्नाद्ध्येव खल्विमानि |
भूतानि जायंते | अन्नेन जातानि जीवन्ति |
अन्नं प्रयंत्यभिसंविशंतित | तद्विज्ञाय |
पुनरेव वरुणम पितरमुपससार | आधीहि भगवो ब्रह्मेति |
तं होवाच | तपसा ब्रह्म विजिग्यासस्व | तपो ब्रह्मेति |
स तपोअतप्यत | स तपस्तप्त्वा ||

हे जगदीश्वर !
अन्न होता जीवन का प्राण,
अन्न से ही है प्रयाण,
बारम्बार प्रवेश निकास भी अन्न में होता,
अन्न ही ब्रह्म है,
भृगु ने पिता से यूँ कहा
प्रभु तप से ज्ञान हो मुझे ||

तृतीय अनुवाक

प्राणों ब्रह्मेति व्यजानात |
प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते | प्राणेन जातानि जीवन्ति |
प्राणम प्रयंत्यभिसंविशंतित | तद्विज्ञाय |
पुनरेव वरुणम पितरमुपससार | आधीहि भगवो ब्रह्मेति |
तं होवाच | तपसा ब्रह्म विजिग्यासस्व | तपो ब्रह्मेति |
स तपोअतप्यत | स तपस्तप्त्वा ||

हे जगदीश्वर !
प्राण ही जीवन है
प्राण से ही है प्रयाण,
बारम्बार प्रवेश निकास भी प्राण में होता,
प्राण ही ब्रह्म है,
भृगु ने पिता से यूँ कहा
प्रभु! तप से ज्ञान हो मुझे ||

चतुर्थ अनुवाक

मनो ब्रह्मेति व्यजानात |
मनसोद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते | मनसा जातानि जीवन्ति |
मन: प्रयंत्यभिसंविशंतित | तद्विज्ञाय |
पुनरेव वरुणम पितरमुपससार | आधीहि भगवो ब्रह्मेति |
तं होवाच | तपसा ब्रह्म विजिग्यासस्व | तपो ब्रह्मेति |
स तपोअतप्यत | स तपस्तप्त्वा ||

हे जगदीश्वर !
मन ही से जीवन में प्राण ,
मन से ही है प्रयाण,
बारम्बार प्रवेश निकास भी मन में होता,
मन ही ब्रह्म है,
भृगु ने पिता से यूँ कहा
प्रभु तप से ज्ञान हो मुझे ||

<u>पंचम अनुवाक</u>
विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात |
विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते |विज्ञानेन जातानि जीवन्ति|
विज्ञानं प्रयंत्यभिसंविशंतित | तद्विज्ञाय |
पुनरेव वरुणम पितरमुपससार | आधीहि भगवो ब्रह्मेति |
तं होवाच | तपसा ब्रह्म विजिग्यासस्व | तपो ब्रह्मेति |
स तपोअतप्यत | स तपस्तप्त्वा ||

हे जगदीश्वर !
विज्ञान ही से जीवन में प्राण ,
विज्ञान से ही है प्रयाण,
बारम्बार प्रवेश निकास भी विज्ञान में होता,
विज्ञान ही ब्रह्म है,
भृगु ने पिता से यूँ कहा
प्रभु तप से ज्ञान हो मुझे ||

<u>षष्ठ अनुवाक</u>
आनंदों ब्रह्मेति व्यजानात |
आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते |आनंदें जातानि जीवन्ति |
आनंदम प्रयंत्यभिसंविशंतित |
सैषा भार्गवी वारुणी विद्या | परमे व्योमन्प्रतिष्ठिता |
स य एव वेद प्रतिष्ठिति | अन्न्वानन्नादो भवति |
महान्भवती प्रजया पशुभिरब्रह्मवर्चसेन |
महान कित्याम ||

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

हे जगदीश्वर !
आनंद रूप प्राणी ही से जीवन उत्पन्न ,
आनंद से ही है प्रयाण,
बारम्बार प्रवेश निकास भी आनंद रूप में होता,
आनंद विदित विद्या ही ब्रह्म है,
भृगु ने पिता से यूँ कहा
आप ही प्राण अन्न समस्त लोकों के ज्ञाता हैं
प्रभु तप से ज्ञान हो मुझे ||

<u>सप्तम अनुवाक</u>
अन्नं न निंद्यात | तद्व्रतम | प्राणों वा अन्नं |
शरीरमन्नादम | प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम |
शरीरे प्राण: प्रतिष्ठित: | तदेतदन्न्मन्ने प्रतिष्ठितम |
स य एत्दन्न्मन्ने प्रतिष्ठितम वेद प्रतिष्ठिति |
अन्नवानन्नादो भवति |
महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्म्वर्च्सेन | महान कित्याम ||

हे नाथ !
यही प्राण अन्न है और अन्न ही प्राण
शक्ति है जीवनी है अन्न'
न करूँ निंदा कभी अन्न की,
अन्न मेरी संजीवनी है,
इस अन्न में ही अन्न है स्थित
इस अन्न में ही प्राण है प्रतिष्ठित
अन्न प्राणाधार है
ब्रह्म के वर्चस ,प्रजा,पशु, कीर्ति सभी का आधार अन्न है
प्रभु कभी न हो मुझसे अन्न का निरादर ||

<u>अष्टम अनुवाक</u>
अन्नं न परिचक्षित | तद व्रतं | आपो वा अन्नं |
ज्योतिरन्नादम | अप्सु ज्योति: प्रतिष्ठितम |
ज्योतिष्याप: प्रतिष्ठिता: | तदेतदन्न्मन्ने प्रतिष्ठितम |
स य एतदन्न्मन्ने प्रतिष्ठितम वेद प्रतिष्ठिति |
अन्न्वानन्नादो भवति |
महान्भवति प्रजया |
पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन | महान कित्याम ||

हे स्वामी !

जल हो या अन्न
सब व्रतों से श्रेयष्कर
अन्न में परिचित
ज्योति, जल में प्रतिष्ठित अन्न ही है,
जल में तेज, तेज में जल अन्य स्वरुप हैं
प्रभु! कभी भी मैं अन्न की अवहेलना न करूँ,
सम्मान करूँ, व्रत साधना सा व्यवहार करूँ,
संतान, पशु, धन, धन्य, कीर्ति सा बहु प्रतिष्ठित रहे ||

नवम अनुवाक
अन्नं बहु कुर्वीत | तद्व्रतम | पृथिवि वा अन्नं |
आकाशोऽन्नाद: | पृथिव्यामाकाश: प्रतिष्ठित: |
आकाशे पृथिवि प्रतिष्ठिता |
तदेतदन्न्मन्ने प्रतिष्ठितम |
स य एतदन्न्मन्ने प्रतिष्ठितम वेद प्रतिष्ठिति |
अन्न्वानन्नादो भवति |
महान्भवति प्रजया |
पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन | महान कित्याम ||

हे जगन्नाथ !
गगन में धरा और धरा में गगन हैं प्रतिष्ठित
अत: अन्न में ही अन्न स्थित
प्रकृति है सार्वभौम में,
अन्न के विस्तारण का संकल्प रहे सदा,
प्रभु कभी भी मैं अन्न की अवहेलना न करूँ,
सम्मान करूँ, व्रत साधना सा व्यवहार करूँ,
संतान, पशु, धन, धन्य, कीर्ति, सा बहु प्रतिष्ठित रहे ||

दशम अनुवाक
न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत | तद्व्रतम |
तस्माद्या कया च विधया बह्वन्न्म प्राप्नुयात |
अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते |
एतदै मुखतोअन्नम राद्वम |
मुख्तोअस्मा अन्नं राध्यते |
एतद्वै मध्य्तोअनम राद्धम |
अंततोअस्मा अन्नं राध्यते ||१||

हे स्वामी !
अतिथि देवो भव की वृति रहे मुझमें,

स्वागत करता रहूँ मधुर वाणी से मैं उनका,
मुझे समृद्धि अवश्य मिलेगी,
मध्य निम्न भाव हो तो क्या
अतिथि सेवा मार्ग से
ऋद्धि वृद्धि मिलती रहे सदा |

श्लोक-२
स एवं वेद | क्षेम इति वाचि | योगक्षेम इति प्राणापानयो: |
कर्मेति हस्तयो: | गतिरिति पादयो: | विमुक्तिरिती पायौ |
इति मानुषी समाज्ञा: | अथ देवी: | तृप्तिरिती वृष्टौ |
बलमिति विद्युती ||२||

हे प्रभु !
आप अपान प्राणों की रक्षा कर.
वाणी में कल्याण भरो,
पैरों में गति, हाथों में कर्म-बल,
विद्युत् में बल, वर्षा में संतुष्टि,
नक्षत्र-नभ में प्रभा,
शक्ति विभूषित प्रजा के वीर्य सा
ब्रह्म तेज विकसित कर मुझे अनुग्रहित करें |

श्लोक -३-६
यश इति पशुषु | ज्योतिरिति नक्षत्रेषु |
प्रजातिरमृतमानंद इत्युपस्थे |सर्व मित्याकाशे |
तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत | प्रतिष्ठावान भवति
तन्मः इत्युपासीत | महान्भवति | तन्मन इत्युपासीत |
मानवान्भवति ||३||
तन्मन इत्युपासीत | नम्यन्तेऽस्मै कामा: |
तद्ब्रह्मेत्युपासीत | ब्रह्मवान्भवति |
तद्ब्रह्मण: परिमर इत्युपासीत |
पर्येम म्रियन्ते द्विषन्त: सपत्ना: |
परि येऽप्रिया भ्रातृव्या: |
स यश्चाय्म पुरुषे | यश्चासावादित्ये | स एक: ||४||
स य एवंवित् अस्माल्लोकात्प्रेत्य |
एत मन्न्मयमात्मानमुपसंग्क्रम्य् |
एतम प्राणामयमात्मानमुपसंग्क्रम्य् |
एतम मनोमयमात्मानमुपसंग्क्रम्य् |
एतम विज्ञानमयमात्मानमुपसंग्क्रम्य् |
एतमानंदमयमात्मानमुपसंग्क्रम्य् |

ईमाँल्लोकंकामानी कामरुप्यनुसंचरण |
एतत साम गायान्नास्ते | हा....वू हा...वू हा.... वू ||५||
अहमन्नमहमन्नमहामन्न्म |
अहमन्नादो...s... अहमन्नादो....| अहमन्नद: |
अहम श्लोककृदहम श्लोक कृदहम श्लोक कृत: |
अहमस्मि प्रथमजा ऋताऽस्य |
पूर्व देवोभ्यो अमृतस्य नाऽभायि |
यो माँ ददाति स इदेव माऽssवा: |
अहमन्न्मन्नमदन्त्माऽद्मी |
अहम विश्वं भुवनंभ्यभवाऽम |
सुवर्ण ज्योति: | य एवं वेद | इत्युपनिषत ||६||

हे नाथ !
ज्यूँ नक्षत्रों में ज्योति,
पशुओं में यश,
प्रजा रत में आनंद नही है ,
जो प्रतिष्ठित हैं, वे ही प्रतिष्ठावान हैं |
जो जिस रूप में ब्रह्म की उपासना करता
ब्रह्म रूप नाथ आप उसे वैसे ही स्वीकार्य हो,
प्रार्थना का भाव रूप स्वयं ही वैसा रूप हो
मेरा मात्र लक्ष्य ब्रह्म रहे,
भक्त बन सेवा में रत रहूँ |
मानव में आदित्य में सब में आप एक रूप विराजते,
नित्य में अनित्य में अन्तर्यामी आप विराजते,
क्रम अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, माया, आनंद
सब का अनुसरण करूँ मैं,
इच्छित गमन करूँ मैं,
साम सा गायन करूँ मैं |
नही कोई आश्चर्य
ब्रह्म ही अन्न है,
भोक्ता है अन्न संयोजक
इस अन्नमय अन्न के स्वरुप को
व्यक्त करता रहूँ सदा,
अति आदि देवों से भी पहले,
अमृत रूपी अन्न को,
अदि से अंत तक भोगूँ सदा,
जून रवि प्रभा को रविन्द्र |
हे नाथ! कृपा रहे अन्न रूपी अमृत मिलता रहे ||

सुरेश चौधरी 'इंदु'

||कृष्णा यजुर्वेदीय तैत्तरीयोपनिषद समाप्त||

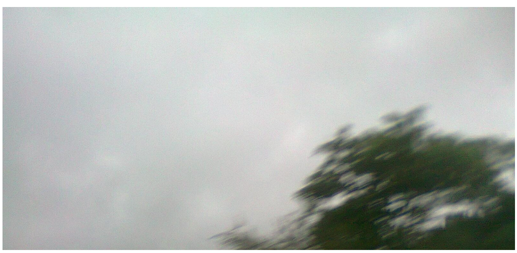

सुरेश चौधरी 'इंदु'

श्वेताश्वेतर उपनिषद

कृष्ण यजुर्वेद

<u>श्वेताश्वेतर उपनिषद -परिचय</u>

श्वेताश्वेतर उपनिषद या श्वेताश्वतरोपनिषत् प्रमुख १० उपनिषदों में एक है, यह कृष्ण यजुर्वेद से सम्बंधित है शोधकर्ता इसे ईशा से ४०० वर्ष पूर्व लिखा हुआ बताते हैं| आदिशंकराचार्य जी ने ब्रह्म सूत्र में इसे मन्त्र उपनिषद भी बताया है| इसमें ११३ श्लोक; ६ अध्यायों में विभक्त हैं| श्वेताश्वेतर ऋषि के नाम से शायद इस का नाम पड़ा है, अंतिम अध्याय में ऐसा संकेत है |

श्वेताश्वेतर का शाब्दिक अर्थ श्वेत से भी श्वेत अश्व है, जो वैदिक काल में मुले नामक पशु को कहा जाता था, जो गौ के सम पूजनीय था|

जिनके पास श्वेत अश्व रहता था, वह श्रेष्ठ कहलाता था एवं उनकी हर कामनापूर्ण होती थी| वह व्यक्ति श्वेताश्वतर कहलाता था| अर्जुन को भी श्वेताश्वतर कहते थे, ऐसा महाभारत में लिखा है|

अन्य उपनिषदों के तुलना में में यह अलग है| यह ईश्वर के प्रभुत्व को साकार दर्शाता है| जब की अन्य उपनिषदों में प्रभु को निराकार बताया है| सबसे बड़ी बात यह है कि प्रभु को शिव, रूद्र, जैसे नामों से संबोधित किया गया है |

मुमुक्षु संन्यासियों के कारण ब्रह्म क्या है अथवा इस सृष्टि का कारण ब्रह्म है अथवा अन्य कुछ हम कहाँ से आए, किस आधार पर ठहरे हैं, हमारी अंतिम स्थिति क्या होगी, हमारे सुख दु:ख का हेतु क्या है; इत्यादि प्रश्नों के समाधान में ऋषि ने जीव, जगत् और ब्रह्म के स्वरूप तथा ब्रह्मप्राप्ति के साधन बतलाए हैं।

उनके मतानुसार कुछ मनीषियों का काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, पृथ्वी आदि भूत अथवा पुरुष को कारण मानना भ्रांतिमूलक है। ध्यान योग की स्वानुभूति से प्रत्यक्ष देखा गया है कि सब का कारण ब्रह्म की शक्ति है और वही इन कथित कारणों की अधिष्ठात्री है। इस शक्ति को ही प्रकृति, प्रधान अथवा माया की अभिधा प्राप्त है। यह अज और अनादि है परंतु परमात्मा के अधीन और उससे अस्वतंत्र है।

वस्तुत: जगत् माया का प्रपंच है। वह क्षर और अनित्य है और मूलत: जीवात्मा ब्रह्मस्वरूपी है, परंतु माया के वशीभूत होने से अपने को उससे पृथक् मानता हुआ नाना प्रकार के कर्म करता और उनके फल भोगने के लिए पुन: पुन: जन्म धारण करता हुआ सुख दु:ख के आवर्त में अपने को घिरा पाता है। स्थूल देह में सूक्ष्म अथवा लिंग शरीर जो कर्मफल से लिप्त रहता है, उसके साथ जीवात्मा जन्मांतर में प्रवेश करता है। इस प्रकार यह संसार निरंतर चल रहा है। इसे ब्रह्मचक्र या विश्वमाया कहा गया है।

जब तक अविद्या के कारण जीव अपने को भोक्ता, जगत् को भोग्य और ईश्वर को प्रेरिता मानता अथवा ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान को पृथक् पृथक् देखता है तब तक इस ब्रह्मचक्र से वह मुक्त नहीं हो सकता। सुख दु:ख से निवृत्ति तथा अमृतत्व की प्राप्ति का एक मात्र उपाय जीवात्मा और ब्रह्म का अभेदात्मक ज्ञान है। ज्ञान के बिना ब्रह्मोपलब्धि आकाश की चटाई बनाकर लपेटने जैसा असंभव है|

ब्रह्म का स्वरूप केवल निर्गुण, सगुण-निर्गुण और सगुण बतलाया गया है। जहाँ सगुणनिर्गुण रूप से विरोधाभास दिखानेवाले विशेषणों से युक्त परमेश्वर के वर्णन और स्तुतियाँ मिलती हैं| दो तीन मंत्रों में हाथ में बाण लिए हुए मंगलमय शरीरधारी रुद्र की ब्रह्मभाव से प्रार्थना भी पाई जाती है| ब्रह्म का श्रेष्ठ रूप निर्गुण, त्रिगुणातीत, अज, ध्रुव, इंद्रियातीत, निरिंद्रिय, अवर्ण और अकल है। वह न सत् है, न असत्, जहाँ न रात्रि है न दिन, वह त्रिकालातीत है- इत्यादि। सर्वेंद्रियविजिंत होकर भी उसमें

सर्वेंद्रियों का भास होता है, वह अणु से अणु, महान् से महान्, अकर्ता होता हुआ भी ब्रह्मा पर्यत समस्त देवताओं का, अर्थात् समस्त ब्रह्मांड का कर्ता, भोक्ता और संहर्ता है। इसी प्रकार ब्रह्म के केवल सगुण रूप के वर्णन में उसे आदित्यवर्णा, सर्वव्यापी, सवभूतांतरात्मा, हजारों सिर, हाथ पैरवाला, भावग्राह्य, त्रिगुणमय और विश्वेरूप इत्यादि कहा गया है। निर्विशेष ब्रह्म का चिंतन अत्यंत दुस्तर होने से मनुष्य की आध्यात्मिक पहुँच के अनुसार अधिक सुसाध्य होने से सगुण और सगुणनिर्गुण रूप से उपासना का विस्तार हुआ है।

अस्तु, ईधन पर ईधंन रखकर उसमें अव्यक्त रूप से व्याप्त अग्नि को प्रकट कर लेने की तरह देह में व्याप्त ब्रह्म का प्रणव द्वारा निरंतर ध्यान करके उसका साक्षात्कार कर लिया जा सकता है। एतदर्थ द्वितीयाध्याय में प्राणायाम और योगाभ्यास की विधि विस्तारपूर्वक बतलाई गई है।

<u>श्वेताश्वतर उपनिषद</u>

<u>|| शांति पाठ ||</u>
ॐ सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हे प्रभु !
गुरु शिष्य दोनों में तारतम्य हो
दोनों की वाणी पवित्र करो,
शक्ति इतनी दो कि
द्वेष-राग से लड़ सकें,
तेजोमय अभ्यास हो,
शांति मिले |
ॐ शांति| शांति | शांति |

<u>अध्याय -१</u>

<u>मन्त्र -१-३</u>
ब्रह्मवादिनो वदन्ति ।
किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठा ।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥१॥
कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या ।
संयोग एषां न त्वात्मभावा-दात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥२॥

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥३॥

हे नाथ!
इस सृष्टि के कारण इसका ब्रह्मतत्व कौन है ?
कहाँ से उत्पन्न हुआ? लोग कहाँ रहते है?
सब व्यवस्था करने वाला जगत्पति कौन है?
किसके नियमानुसार सुख-दुःख का भोग होता है?
इस जगत का संचालक कौन हैं इत्यादि|
कौन कहे कि जगत कारण सत्य ही काल है?
कौन कहे स्वभाव कारण से सृष्टि बनती है?
कौन कर्म कारण है, कर्म ही सर्व प्रमाण है?
कौन कहे भाव कारण , पंचभूत ही कारण हैं?
जीवात्मा को कौन कहे कारण कौन है?
जड़ प्रधान कारण, जड़ आत्मा अधीन सब
स्वतंत्र कार्य करे वही जीवात्मा
परन्तु सुख दुःख देनेवाले कर्मबद्ध सदा,
प्रारब्ध तो भोग का कारण, यह पूर्ण स्वतंत्र नही,
कारण-तत्व जगत में एक ही नही |
आपके ध्यान में बैठ आपका दर्शन करता रहूँ,
त्रिगुणमयी से गुनातीत प्रभु आपकी शक्ति पाता ही रहूँ,
काल रहित शासन आप हो करते
मैं पंचभूत जीव, रहूँ आपके वश में |

<u>मन्त्र-४-६</u>
तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः ।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ॥४॥
पञ्चस्रोतोम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम् ।
पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥५॥
सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे ।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥६॥

हे स्वामी !
आप एक ही है जो प्रकृति रूपी निमित रहते,
एक आपका आधार
निमित जो प्रकृति जगाधार,
रक्षा मात्र हेतु त्रिगुण रचते
सत्व रज तम ये बनाये आपने प्रकृति के अंग,
भिन्न-भिन्न भोगों हेतु इन्हें बनाया

आठ सूक्ष्म एवं आठ स्थूल से इन्हें रचाया,
अंतःकरण की वृति बना भेद माना
दस इन्द्रिय, विषय प्राण, दस सहायक अरा,
आठ वस्तु, छः समूह से देह रूप बनाया.
अनेक रूप बना अशक्त भी बनाया ,
तीन मार्ग बताये-देवयोनि, पितृयोनि, अन्य योनि ..
नाभि रूप अज्ञान जगत; इसे सब का केंद्र बताया,
पुण्य-पाप निमित्त जग में परिवर्तन आपने किया,
इस भाँति जग को वर्णित कर हमें बताया|
ज्ञानेन्द्रियों के रूप में
नदीरूपी जगत के पाँच प्रवाह हैं
जग का ज्ञान पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्ण करें|
पञ्च सूक्ष्म भूत भी ज्ञानेन्द्रियो से ही निकलते,
इन सूक्ष्म भूतों से जगतनदी का मूल होता,
इसका प्रवाह होता अति भयंकर,
पञ्च प्राण इसकी तरंगे, पञ्च विषय इसके आवर्त
सर्व ज्ञान कारण मन जगत नदी का मूल दिखे,
मन बिन सृष्टि नही,
मन से ज्ञान सब उत्पन्न हो,
पञ्च दुःख वेग,
गर्भ,जन्म,मृत्यु,बुढ़ापा एवं वैधव्य,
पञ्च भोग
अहम्, मृत्युभय, राग, द्वेष, अज्ञानता,
नदी के भिन्न-भिन्न रूप
पचास अंतर हैं नदी के
जो नदी जगत की वही जानता तत्व ||
सब को आश्रय देने वाले प्रभु आप एक हैं,
भव रहती जीवात्मा का परमात्मा भी एक है,
स्वयम के प्रभु वहीँ हो आप जहाँ जीवतत्व जानते
आपका तप कर अमरत्व प्राप्त करूँ |

<u>मन्त्र -७ -९</u>
उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च ।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥७॥
संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः ।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृ-भावाज् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥८॥
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता ।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥९॥

हे परमात्मा !
वेदों में भी पढ़ा, आप ही सर्वश्रेष्ठ आश्रयदाता हैं,
अविनाशी हैं,
तीनोलोकों को आश्रय देते हैं,
ज्ञानी आपको हृदय में अंतर्यामि रूप से जानते,
तत्पर बन, आप जन्म को टाल दें,
इतनी कृपा करें|
सृष्टि संयुक्त रूप से जीव एवं प्रकृति की है,
आप इसके धारक, पोषक हैं,
जीव तो बस भोगी है,
प्रकृति से बंधा जीव
आपके स्वरुप को भूल जाता है,
मैं आपको जानू मुझे बंधन मुक्त करें |
आप तो सर्व समर्थ, सर्व ज्ञानी हैं,
मैं जीव अल्पग्य हूँ,
जीव यह अल्प शक्ति वाला,
अजन्मा कहने से कहाँ बने,
अजन्मा तो प्रकृति है,
जीवों को भोग कराती,
आप अनंत, अलग होकर भी,
विश्वरूप सर्व होकर करता हैं,
प्रकृति के स्वामी! मुझे मुक्त करें |

मन्त्र-१०-११
क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः ।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्व भावात् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ॥१०॥
ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ।
तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥११॥

हे अधिष्ठाता !
प्रकृति तो है नाशवान,
जीव अविनाशी सर्वदा,
जड़ प्रकृति को उभय जीव की सत्ता आपने दी,
आपका मनन ध्यान से हो,
तन्मय हो करूँ,
आप बस मिल जायें,
भ्रम दूर हों सारे |
मैं साधक नित ध्यान धरूँ

आप मुझे प्राप्य हों और सब बंधन टूटें,
पञ्च क्लेश भी दूर हों
जन्म-मृत्यु चक्र से निवृत होऊँ
यह देह फिर आप में मिल जाये,
बस यही कृपा करें ||

<u>||इति अध्याय प्रथम ||</u>

<u>अध्याय २</u>

<u>मन्त्र-१-३</u>
युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥१॥
युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे ।
सुवर्गेयाय शक्त्या ॥२॥
युक्त्वाय मनसा देवान् सुवर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥३॥

हे प्रभु !
सकल सृष्टि के निर्माता
मंगलकर्ता
प्रथम मेरी मंद बुद्धि को आप अपने रूप में लगायें,
अग्नि रहित देवों को जो शक्ति दी विषय में
पुनः इन्द्रियों में स्थापित की
वही जा बनी इन्द्रियों के काम बिना
मन की सहायक, तत्व प्राप्ति की साधक
इन्द्रियां मुझे मिले |
मन को पूर्ण रूपेण लगा कर
सर्वदा भक्ति यज्ञ करता रहूँ
पूर्ण शक्ति से आपके आनंद कार्य करता रहूँ, |
करो प्रेरणा इस विधि,
स्वर्ग सम लोकों में जा,
आकाश को देखूँ
इन्द्रिय को देवों के प्रकाश के साथ,
मन बुद्धि मेरी पा ले,
यह प्रकाश मन इन्द्रिय में फ़ैल कर जगमगाए,
आप ध्यान रूप, साधन से कृपा करें |

<u>मन्त्र-४-६</u>

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४॥
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥५॥
अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राधिरुध्यते ।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र सञ्जायते मनः ॥६॥

हे परमेश्वर !
ब्राह्मण भांति श्रेष्ठ कहलाऊं
चित्त की ऐसी वृत्ति बने,
अग्निहोत्र से शुभ कर्मो में बुद्धि स्थापित हो,
जगत तो मन को जानता,
अद्वितीय है यह,
सर्व महान, व्यापक, सर्वज्ञ हैं,
इसके उत्पादक आप हैं,
आपकी मैं परम स्तुति करता |
मन बुद्धि, ब्रह्म सब के स्वामी आप हैं,
प्रभु आपको बारम्बार नमन, शरण लीजिये,
विद्वतजन यश फैलाते, स्तवन गाते,
समस्त लोक में स्तुति कर दिव्य लोक में जाऊँ ||
ॐ कर जप से देह स्थिर हैं,
प्राणवायु का निरोध हो रस प्राकट्य से,
सोमरस महानानद इसका पान करूँ,
मन विशुद्ध हो, नवल नवीन हैं |

<u>मन्त्र-७-९</u>
सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् ।
यत्र योनिं कृणवसे न हि ते पूर्तमक्षिपत् ॥७॥
त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयानकानि ॥८॥
प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः ॥९॥

हे श्रेष्ठ !
जगकर्ता प्रभु आपका सेवक,
मैं आपका साधक,
आपकी आराधना सदा करूँ,
आपकी शरण रहूँ,
प्रेम से आपको प्राप्त करूँ,

पूर्व कर्मों के बंधन तुझमे समर्पित करूँ |
ज्यूँ वक्षस्थल के साथ ग्रीवा को स्थिर रखा,
मन द्वारा इन्द्रियों को धीरे धीरे स्थापित किया,
प्रणव जप से नौका पार लगे,
प्रेम बैठा रखूँ नौका पर,
भयंकर प्रवाह मन का है,
यह नौका आप ही पार लगायें |
योग्य आहार विहार, योग्य कर्म करूँ,
प्राणायाम कर सूक्ष्म बन प्राण बाहर निकाल कर,
मन को विषयपूर्ति से वश में करूँ,
ज्यूँ तूफानी अश्व को सारथी बश में करता है |

<u>मन्त्र-१०-१२</u>
समे शुचौ शर्करावह्निवालिका विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।
मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥१०॥
नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥११॥
पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥१२॥

हे योगेश्वर !
शुद्ध भूमि सम, तप, कंकर, धूल से रहित,
शांत नीरव, एकांत हो जहाँ,
मन को नेत्रों के मध्य गुफा सम एकांत
मन को ध्यानाकषित करूँ |
आपको प्राप्त करने हेतु
अनेकानेक ध्यान दृश्य बताये,
बीज, अंगिया, चन्द्र, स्फटिक मणि आदि दृश्य,
सूर्य, वायु, अग्नि, धूम्र, तेजपुंज भी बताया,
सब दृश्यों को ध्यान रख योग क्रिया से आपको पाऊँ
ज्यूँ योगी पृथ्वी के पंच-महाभूतों को नियंत्रित करते हैं,
पंचमहाभूतों से सम्बंधित पञ्च सिद्धि को सिद्ध करते हैं,
योगाग्नि से प्रज्वलित देह
योगियों को रोग मुक्त रखे,
जरा-मृत्यु से दूर इच्छा मृत्यु प्राप्त करूँ |

<u>मन्त्र १३-१५</u>
लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादः स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥१३॥

यथैव बिंबं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत् सुधान्तम् ।
तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥१४॥
यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपापैः ॥१५॥

हे नाथ !
योग क्रिया से मेरे शरीर को हल्का बनाओ,
रोग मुक्त बनाओ,
विषय लालसा से मुक्त करो,
देह को उज्जवल बनाओ,
वाणी को मधुर, सर्वांग सुवासित करो
मल मूत्र का कम त्याग हो
शुद्धि एवं सिद्धि बनी रहे |
ज्यूँ माटी में पड़ा रत्न
तेजोमय हो, धोने से खूब चमकता है,
प्रकाश पड़ने से प्रतिबिंबित करता है,
वैसे ही जीवात्मा योग करके
आत्म-तत्व को प्राप्त करती है,
दुःखरहित प्रसंग मिलता है,
मुझे भी प्रभुकृत कृत करो |
दीपक सम आत्म-तत्व को देखूँ,
आत्मा को आपके संग योगकाल में पाऊँ,
विशुद्ध निश्चल परमात्मा
योगी बन सब प्रकार के बंधन से मुक्त होऊँ|

मन्त्र-१६-१७
एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥१६॥
यो देवो अग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥१७॥

हे नाथ !
आप तो परम देव है,
समस्त जग में व्यापक हैं,
ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम आप ही आये,
जगत को प्राकट्य किया फिर भूमि को
सर्व ज्ञानी हैं,
आप अंतर्यामी हैं|
हे परमात्मा!

अग्नि में आप,
जल में आप,
व्यापक रूप हो आप,
समस्त विश्व में बसते आप,
औषधि में विराजते आप,
वनस्पति में भी आप,
आपको नमन! नमन! नमन ||

अध्याय-३

मन्त्र-१-३
य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१॥
एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु र्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥२
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रै-र्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥३॥

हे जग अधिष्ठाता !
आपने जगत को रचा एवं अपनी क्षमताओं से हमें अवगत करवाया
शासन कर विविध लोकों पर; योग्य साम्राज्य किया,
बिना किसी अन्य के सहयोग के सृष्टि का विस्तार किया,
प्रभु! जान सकूँ आपको,
यह कृपा कीजिये|
रूद्र रूप में समाहित प्रभु,
निज शासन बल से जग करते संचालित,
एक आप ही हैं, शक्ति बढ़ी जिनकी जग में,
न कोई अन्य कारण रूप
रक्षा करते आप,
अंत में लीन रहूँ, दया करें आप ।
चक्षुओं से देखते समस्त विश्व को,
मुख से स्वयमेव ग्रहण करते सब प्रसाद
हाथों से सब वस्तुओं को अपनाते
आश्रितों की रक्षा करते,
जहाँ आपके चरण रहते,
पृथ्वी से गगन तक, सब की रचना करने वाले
आप एक हैं,आप एक हैं,
आपने प्राणीमात्र को हाथों का एवं पक्षियों को पंखों का आशीष दिया|

<u>मन्त्र-४-६</u>
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥४॥
या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥५॥
याभिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥६॥

हे नाथ !
रूद्र रूप प्रभु- आप देवराज इंद्र से देवों को उत्पन्न करते,
सब के स्वामी आप, महर्षि, सर्वज्ञ आप,
सृष्टि से पूर्व हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया
हे प्रभु! हमें सद्बुद्धि दें |
रुद्रदेव! आपकी कल्याणमयी शांत मूरत,
पुण्य प्रकाश उसमे,
दर्शन मात्र से सुख-प्राप्ति होती,
हे गिरिवासी! सुखकर्ता, शांति प्रदायक,
आपकी मूरत देख मैं धन्य हो रहा हूँ, |
हे गिरिवासी, हे सुखदायक, हे हिमगिरी रक्षक,
हाथों में बाण ले फेंक जग को नष्ट करते
शांत हों,
मंगलरूप हों,
सुखदाता रहें,
सृष्टि की दुःख-स्थापना
आपको नही शोभती |

<u>मन्त्र-७-९</u>
ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितार-मीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥७॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥८॥
यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद्य-स्मान्नणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥९॥

हे नाथ !
ब्रह्म जगत एवं जीव
की रचना की,

देह के अनुरूप प्राणी में यह स्थापित रहती है,
विश्व के परिवेश में आप महान एक ही हो,
मैं आपको ग्रहण करूँ,
जन्म रहे न कदापि |
अज्ञान रूपी अन्धकार; अतीत बन कर रह जाये,
सूर्यसम प्रकाश रूपी प्रभु मुझे प्राप्त हों ,
मृत्यु का मानवी पद जान कर,
अमृत पद द्वारा अन्य मार्ग मिले,
एक यही मार्ग रहे |
कोई आपसे श्रेष्ठ नही,
न ही कोई आपसे सूक्ष्म,
महान भी नही कोई,
कोई व्यापक भी नही आपसा,
वृक्ष सा निश्छल
गगन सा स्थिर,
आप से ही जग पूर्ण रूप से बना है |

<u>मन्त्र-१०-१२</u>
ततो यदुत्तरततं तदरूपमनामयम् ।
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति अथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥१०॥
सर्वानन शिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥११॥
महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्वस्यैष प्रवर्तकः ।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥१२॥

हे नाथ !
रूप विकार से परे,
हिरण्यगर्भ से उत्तम,
अमर बन जानिए,
अन्य लोक दुःख में जो पड़े |
सब के मुख में, सब के शिर में. सबके ग्रीवा में.
सब के ह्रदय में वास करते आप,
सर्व व्यापक हो, सर्व मंगल कर्ता हो |
सबके स्वामी , सर्व समर्थ,
अविनाशी, ज्योति स्वरुप
निज प्राप्ति हेतु, उर में बैठते,
आकर्षण बढ़ाते,
तब जीव आपको प्राप्त करते,
प्राप्ति कार्य हेतु प्रयत्न शील

बन खूब सुख पाऊँ |

<u>मन्त्र-१३-१५</u>
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१३॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१४॥
पुरुष एवेदँ सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥१५॥

हे स्वामी !
अंगुष्ठ प्रमाण हृदय में रहते हम
आप अन्तर्यामी, सब के मन के स्वामी,
मैं निर्मल मन से ध्यान धरूँ
आपको जान कर बंधन मुक्त बनूँ |
आपके सहस्त्रों नेत्र, सहस्त्रों मस्तक एवं
सहस्त्रों पग हैं
सब तरफ से व्यापक जग में आप हैं,
पर रहते हृदय में ही सदा
हृदय नाभि से दस
अंगुली ऊपर है,
आप वहाँ स्थित हैं |
भूत में क्या हुआ, भविष्य में क्या होगा,
वर्तमान में जीवित रहना ही सिखाया
सर्व जगत आपका रूप है
जो आप जगत रूप में प्रकटे
मुक्ति ही पानी है ||

<u>मन्त्र-१६-१८</u>
सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१६॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥१७॥
नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः ।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥१८॥

हे स्वामी !
जिनके सब हाथ हैं पैर हैं,आँखें हैं, सर है,
मुख है और कान हैं,

जगत में सर्वप्रकार व्यापक है,|
इन्द्रियाँ जिन्हें नही
वे जो इन्द्रियों को जानता हैं
वे सब के स्वामी, सब के शासक
सब के आश्रय दाता हैं |
स्थावर-जंगम सब को रखूँ वश में
नवद्वार के नगर में
वाह्य जग में वास करूँ ||

<u>मन्त्र-१९-२१</u>
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥१९॥
अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥२०॥
वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात् ।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥२१॥

हे नाथ !
हाथ-पाँव नही फिर भी
सब वस्तुओं को ग्रहण करते आप,
अतिवेग से सब देखे
आँख बिना सब जाने
कान बिना सब सुने
ज्ञेय को भी जाने
उसे कोई नही जानता |
आप सूक्ष्म से अति सूक्ष्म
विशाल से अति विशाल
जीवों के हेतु रहते ह्रदय गुफा में
संकल्प विहीन विकल्प नही
आपकी महिमा को जो जानता
वही दुःख बंधन को तारता |
आपको अजन्मा अनित्य कहा जाता है
सर्व स्थल घट-घट व्यापक माना जाता है
जरा मृत्यु सी व्याधि से विकार से परे कहा जाता है
मैं आप पूर्ण परमेश्वर को जानूँ ||

<u>मन्त्र-१-३</u>
य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद् वरणाननेकान् निहितार्थो दधाति ।
विचैति चान्ते विश्वमादौ च देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥१॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः ॥२॥
त्वं स्त्री पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥३॥

हे जगदीश !
एक वर्ण अतीत में कोई गूढ़ प्रयोजन
शक्ति योग अनेक प्रकार के निहित अर्थों में धारण कर
जगत रूप में प्रकट
जगत धारण करें
जगत में लीन रहते
आप हैं अद्वितीय
आप मुझे मंगल बुद्धि दें |
सूर्य से अग्नि, वायु शशि,
नक्षत्र वाणी ब्रह्मा से प्रजापति |
आप स्त्री, आप पुरुष, आप कुमारी, आप कुमार
वृद्ध लिए लकुटी आप,
विराट रूप आप,
मुख आपका जग सम
आप विश्व रूप हो |

<u>मन्त्र-४-६</u>
नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः ।
अनादिमत् त्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा ॥४॥
अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥५॥
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥६॥

हे जगदीश्वर !
भ्रमर हो या नीलरंग पक्षी सब कुछ आप हैं,
चमकते बादल ऋतु के सागर आप हैं,
विश्व समस्त आपसे ही प्रकट हुआ
जड़ भी तू, चेतन भी तू,
प्रकृति के स्वामी आप,
जल हो या थल आप व्यापक हैं |
त्रिगुनो में अपरा प्रकृति बनी,
फिर बने सब पदार्थ त्रि रंगी जो कहाये
फिर प्रकृति परा बनी

जीव बने उससे, जीव भोगे अपरा से
कर्म फल सब मिले
मुझे ज्ञान दीजिए
न रहूँ प्रकृति वश,
सार ले छोड़ दूँ, बंधन में न रहूँ |
ज्यूँ एक ही वृक्ष पर दो पक्षी मित्र भावना से रहते
एक तो फल का स्वाद लेता
दूसरा मात्र दर्शन करता
जीवात्मा एवं परमात्मा भी इस देह में वैसे ही रहते
जीव कर्म का भोग करता
परमात्मा देखते
प्रभु मुझे वह ज्ञान प्राप्त हो जो आपने मेरे लिए रखा है ||

<u>मन्त्र-७-९</u>
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥७॥
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥८॥
छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।
अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः ॥९॥

हे प्रभु !
जीव राग में डूबा है,
प्रभु! आपको देखता नही
मोह ग्रसित है, शोक ग्रसित है,
दीन है यह
भक्त बना मुझे आपकी सेवा में अनुरक्त करें,
आपकी महिमा का ज्ञान हो एवं शोक रहित बनूँ ||
आपको समस्त देव पूजते,
वेद आपमें समाहित,
अविनाशी प्रभु आप गगन सम व्यापक हो
वेदमंत्र का लाभ तो अनेक हैं
पर वेद आप में विद्यमान है
आपको जान लूँ,
आप सर्वत्र निवास करते |
वेदमंत्रों के छंद
यज्ञ व्रत के नियम
भूत वर्तमान भविष्य सब वर्णित वेदमंत्रों में
तत्व की सहायता से आप प्रकृति रचते

आपके स्वरुप को न भूल कर
बंधन में न बनूँ |

<u>मन्त्र-१०-१२</u>
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं च महेश्वरम् ।
तस्यवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥१०॥
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदाम् सं च विचैति सर्वम् ।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥११॥
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥१२॥

हे जगत के स्वामी !
माया तो प्रकृति है,
मायापति हैं आप
इस शक्ति को बहुरूप से
जगत में विस्तृत किया आपने|
सब योनियों के स्वामी आप,
आपमें ही सृष्टि विलीन होती,
प्रकट भी वही से होती,
सर्व नियंता परम आप हो,
हे वरदायक आपकी स्तुति करता रहूँ,
तत्व ज्ञान को जानता रहूँ,
सनातन शांति का लाभ हो,
परम शांति प्राप्त हो |
इन्द्रादि देवों को रूद्र रूप को आप बनाते
अत्यधिक बना, सर्वज्ञ महान बनते
ब्रह्मा से भी पहले आप थे,
मुझे आप मंगलबुद्धि प्रदान करें |

<u>मन्त्र-१३-१५</u>
यो देवानामधिपो यस्मिन्ल्लोका अधिश्रिताः ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्ठारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥१४॥
स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥१५॥

हे नाथ !

हे सर्वदेवों के अधिपति!
सब लोगों के आश्रय दाता,
द्विपद-चतुर्पद प्राणी बनाये आपने,
आनंद प्रदाता
सब कुछ समर्पित आपको,
श्रद्धापूर्वक समर्पण भाव लिए शरण रहूँ |
सूक्ष्म से अति सूक्ष्म हृदय में वास करने वाले प्रभु
विश्व रचियेता एक हो कर भी बहु रूप में रहने वाले प्रभु
मंगलमय शांत ब्रह्म प्रभु
आपको जान पाऊँ
परम शांति प्राप्त करूँ |
हे जग रक्षक!
हे जग स्वामी!
सृष्टि धारी!
सब जीवों में निवास करने वाले प्रभु,
देव ऋषि ध्यान कर आपमें लीन रहते
जान कर आपको मृत्यु बंध से मुक्त होऊँ ||

श्लोक १६-१८
घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१६॥
एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१७॥
यदाऽतमस्तान्न दिवा न रात्रिः न सन्नचासच्छिव एव केवलः ।
तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥१८॥

हे जगदीश !
घृत समसार सब का,
प्राणियों में अति सूक्ष्म गूढ़,
सृष्टि में व्यापक एकमात्र आप हो,
मैं आपके रूप को जान बंधन मुक्त होऊँ |
विश्व रचयिता महात्मन सर्व शक्तिवान प्रभु,
सूक्ष्म रूप से हृदय में रहते
निर्मल उर को बुद्धि चित से ध्यान कर
आपको प्राप्त करूँ
मैं साधक प्राप्त कर अमर बनूँ |
अज्ञान रूपी तमस दूर हो,
दिवा रात्रि का भ्रम दूर हो,
सत्य असत्य से परे

मात्र मंगल तत्व जो है,
वह अविनाशी प्रभु सूर्य से भी श्रेष्ठ आप हो
मुझे वह परम ज्ञान दीजिए ||

<u>मन्त्र-१९-२१</u>
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये न परिजग्रभत् ।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः ॥१९॥
न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२०॥
अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते ।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥२१॥

हे विधाता !
ऊपर से नीचे से आसपास से कैसे पकडूँ
मध्य भाग से प्रभु आपको जकड़ लूँ,
आपका नाम ही महान यश
यश सर्व स्थल
कोई उपमा आपकी कैसे करूँ |
सृष्टि में दिव्य रूप से प्रकट नही होते
प्राकृतिक नेत्र से आपके दर्शन नही होते
भक्तिमय चक्षु से जब मन में झाँक देखूँ
दिव्य आँखे प्राप्त हों तब
अमृत सदृस आप के दर्शन करूँ |
हे रूद्र!
अजन्मा सर्वदा आप,
चाहो तो जन्मते,
आप ही जन्म-मृत्यु से मुक्त कर सकते,
आपकी शरण हूँ
आज मंगल रूप प्रदान करें
भयमुक्त करें,
रूप आपका दर्शावें |

<u>मन्त्र-२२</u>
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा न अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदामित् त्वा हवामहे ॥२२॥

हे स्वामी !
विभिन्न भेंटे मध्य में दे रहा
रक्षा करें हमारी,

कुपित कदापि न हों आप,
पुत्र-पौत्र की आयु वृद्धि हो,
धरा पर गौ-अश्व सम्पदा न घटे
धरा पर वीर पुत्र न घटें ||

<u>अध्याय-५</u>

<u>मन्त्र -१-३</u>
द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे ।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥१॥
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः ।
ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ॥२॥
एकैक जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः ।
भूयः सृष्ट्वा पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥३॥

हे स्वामी !
ब्रह्मा से भी उत्तम, अनंत अविनाशी,
विद्या एवं अविद्या के आश्रय प्रदाता
हे ब्रह्म!
परिवर्तन शील जड़ प्रकृति ही अविद्या है,
नित्य जीव अनन्य शासक विद्या है |
इस भाँति रूपरंग की आकृति के स्वामी आप
आपके अधीन पञ्च भूत
सर्व प्रथम आप ही आये
ब्रह्मा ने भी पुष्ट किया
आप ही सर्व ज्ञाता |
इस जग में पंचभूत रचा आपने
नामरूप में फिर परिवर्तित किया
फिर नाश किया आपने,
सब लोकों को रचा उसके शासनकर्ता को रचा
आप सर्व अधिपति प्रभु मुझे संरक्षण दें |

<u>मन्त्र-४-६</u>
सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान् ।
एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥४॥
यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद् यः ।
सर्वमेतद् विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः ॥५॥
तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद् ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम् ।
ये पूर्वं देवा ऋषयश्च तद् विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥६॥

हे जग रचयिता!
ज्यूँ सूर्य अकेला सब दिशाओं में प्रकाश देता,
आप समस्त प्रकृति को
शक्ति दे काम करने की प्रेरणा देते |
आप ही कारक आप ही कारण
संकल्प रूपी तप कर्ता
प्रकृति को दें सामर्थ्य,
रूपरंग प्रदान करें,
सत्य हीन गुण साथ
जीव सब योग करे
विश्व की व्यवस्था करते हैं आप |
उपनिषदों में सूक्ष्म रूप से वर्णन आपका
वेद प्रकट हुए उनसे
ब्रह्मा ने बताया
फिर ऋषि मुनि को ज्ञात हुआ
यह अमृत सम हैं
वेदों से वेदांत तक का
ज्ञान हमें प्रदान करें |

<u>मन्त्र-७-९</u>
गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता ।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः ॥७॥
अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितो यः ।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः ॥८॥
बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥९॥

मैं जीवधारी गुणों से बँधा जन्म-मरण में भटक रहा
अपने कर्मों के अनुसार भोग भोग रहा
त्रिगुण से बँधा त्रिगति ही पाउँगा
मुक्त करें प्रभु |
अंगुष्ठ प्रमाण बन जीव में समाहित,
सूर्य सम तेज़ स्वरुप होते आप
अहंकार संकल्प से भरपूर
बुद्धि एवं गुणों से भी भरपूर
ममतामय जीव निज गुणों से चूर
मैं सदा आपसे जुडूँ
कृपया ज्ञान सूक्ष्म दिजिये |

सुरेश चौधरी ‘इंदु’

एक बाल के अन्तः भाग के सहस्त्र टुकड़ों को
पुनः सहस्त्र टुकडो में बाँटे
इतने सूक्ष्म जीव का निर्माण किया
आपकी शक्ति अनंत
आप व्यापक हो प्रभु |

<u>मन्त्र-१०-१२</u>
नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेने तेने स युज्यते ॥१०॥
सङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैर्ग्रासाबुवृष्ट्यात्मविवृद्धिजन्म ।
कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसम्प्रपद्यते ॥११॥
स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति ।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः ॥१२॥

हे नाथ !
जीवात्मा; न स्त्री, न पुरुष, न नपुंसक
जब देह धरे आत्मा तो होती जीवात्मा
स्त्री-पुरुष का भेद तो देह से है
भेद विहीन जीव है उपाधि तो परे है |
विचारों से स्पर्श, दृष्टि से मोह, अन्नजल से वृष्टि,
सजीव देह की वृष्टि इन सब से होती,
यह सब तो देह सहवास के साधन
गर्भ में आ भोजन-जल से देह निर्माण करते
अथवा भिन्न भिन्न प्रकार से पोषण होता
संकल्प वृद्धि से उक्तिगत योनि में प्रवेश करते
आसक्ति अनुसार मत्स्य योनि, पशु योनि,
वृष्टि मात्र से वृक्ष योनि,
लताओं से औषधि
अनेकों प्रकार से जग में पोषण होता है
कर्मानुसार योनि होती प्राप्त |
निज कर्म से बंधे
मन इन्द्रियों में विचरता
जीव अनेक जन्म लेते
मोह-ममता के पोषण हेतु
कर्म निर्वहन हेतु स्वतंत्र जन्म लेते
अथ मुझे भी योग्य योनि में आप जन्माना ||

<u>मन्त्र-१३-१४</u>

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्ठारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१३॥
भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥१४॥

हे स्वामी !
जग व्यापक हैं आप
आप आदि अंत मध्य विहीन
जग के निर्माता-धर्ता
एक होते हुए अनेक रूप में आप
सर्वदा के लिए बंधन मुक्त करें प्रभु |
जग के करता धर्ता
बिन आधार आप
आपसे भक्ति भाव से मिलता रहूँ
कल्याण रूप आप आयें,
देह छूटे बंधन मुक्त होऊँ ||

अध्याय-६

मन्त्र- १-३
स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः ।
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥१॥
येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद् यः ।
तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथिव्यप्तेजोनिलखानि चिन्त्यम् ॥२॥
तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तावेन समेत्य योगम् ।
एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥३॥

हे ईश !
समस्त पदार्थों की निहित शक्ति
जगत का कारण है,
समय काल की भी शक्ति
जगत कारण है,
मोहग्रस्त लोग इसे नही पहचानते,
आप ही हो जो जगत को चलाते प्रभु |
यह जगत जिनसे व्याप्त,
जो है कारणों का कारण,
सर्वगुणों का ज्ञाता जो,
ज्ञान रूप सत्य का सहाय जो,
आप हो जो इस जग को

इतनी श्रेष्टता से संभालते,
पृथ्वी, जल, तेज, सब से प्रभु आप शक्ति देते |
जड़ तत्व रचा अति ध्यान पूर्वक
फिर रचे चेतन तत्व
जड़ चेतन के योग से सृष्टि रची,
एक अविद्या, दो पाप-पुण्य, त्रिगुण बनाए
अष्ट प्रकृति, काल रचे
फिर बनाए
अहम, ममता, आदि गुण से आत्मा
जीव से सम्बन्ध बना जगत बनाया |

<u>**मन्त्र-४-६**</u>
आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः ।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ॥४॥
आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः ।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥५॥
स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम् ।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ॥६॥

हे स्वामी !
त्रिगुण के सर्व कर्म से जो साधक जीवन आरंभ करता
अहम एवं ममता आपके चरणों में समर्पित करता रहूँ
मेरे कर्म पूर्व कर्मो से भी विनिष्ट होते
भिन्न जीव जड़ तत्व में आपको मैं पाऊँ |
आदि जगत के परमात्मा आप,
आप कालातीत सकल
जीव एवं प्रकृति के संयोग के कारण आप,
अंतस में आप, जग में आप,
भक्ति प्रेम की गाथा पुरानों को नमन |
संसार चलाते हो और संसार से भिन्न हो,
काल से काल तथा आसक्ति रहित हो
धर्म वृद्धि पाप विनाशक ऐश्वर्य के स्वामी
जगताधार, ह्रदय में विराज अमर करो |

<u>**मन्त्र-७-९**</u>
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥७॥
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥८॥

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥९॥

हे नाथ !
महान ईश्वर, देवों के देव,
पति के पति, जग स्वामी, आपकी स्तुति करूँ
मुझे उत्तम बनायें ताकि मैं आप को जान सकूँ ||
देह नही, इन्द्रियाँ नही,
फिर भी आपसे उत्तम कोई नही
ज्ञान, कर्म, बल की शक्ति अपार, दिव्य
जग का सारा ज्ञान एवं कर्म बल आपके नजदीक भी नही |
जो है सबका स्वामी, सब का शासक,
कोई नही उसका शासक,
कोई चिन्ह विशेष नही,
सर्व व्यापक हैं आप,
देवधि देव सिर्फ आप
कोई आपका रचयिता नही, कोई आपका स्वामी नही |

<u>मन्त्र-१०-१२</u>
यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः ।
देव एकः स्वमावृणोति स नो दधातु ब्रह्माप्ययम् ॥१०॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥११॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥

हे स्वामी !
ज्यूँ जाल में मकड़ी अपने अंग छुपाती है,
वैसे ही निज सामर्थ्य से अंगों में आप वास करते हैं
अव्यक्त यह सामान्य जन न देख सकें,
आप मुझे आश्रय दें ताकि मैं देख सकूँ|
हे परमदेवक! आप ह्रदय गुहा में वास करते
सकल व्यापक अंतर्यामी प्राणी में रहते
कर्म का फल आप ही देते,
आश्रय प्रदाता आप,
सर्व साक्षी, चेतन केवल शुद्ध गुणों के दाता |
एक होकर अनेक जीवों के शासक,
एक बीज प्रकृति का होकर बहु विधि जग रचते,
धीर बनू, ह्रदय में रहते प्रभु का दर्शन करूँ

सुख मिले परमानन्द मिले |

<u>मन्त्र-१३-१५</u>
नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१३॥
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१४॥
एको हंसः भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः ।
तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१५॥

हे नाथ !
एक नित्य चेतन प्रभु
कर्म भोग देते आप
अनेक नित्य चेतन जीवों को आप भोग दें
ज्ञान कर्म से प्राप्त हो
आपके कारण
सब जान बंधन मुक्त होऊँ |
सूर्य प्रभा सम चन्द्र प्रभा नही
चपला न चमके फिर भी अग्नि प्रज्वलित होती,
इस प्रकाश से पूर्ण जग प्रकाशवान है,
आप प्रकाश देते सब पदार्थ प्रकाशित होते |
ब्रह्माण्ड तेजोमय करते ,
आप व्यापक हैं,
जल में अग्नि नही रहती
परम सत्य आप ही जानते
मृत्यु पर विजयी हो
परमधाम मिले आपकी शरण पड़ा ||

<u>मन्त्र-१६-१८</u>
स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः ।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥१६॥
स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता ।
य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ॥१७॥
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवं आत्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥१८॥

हे स्वामी !
सर्व करता, सर्वज्ञ,
स्वयं प्रकट इश्वर आप

काल कालका, दैवी गुणों के ज्ञाता आप
प्रकृति जीवों की स्वामी,
आप प्रकृति स्वामी,
जन्म मृत्यु मोक्ष के कारक,
सत्य सत के धारक आप |
अमृतमयी आप स्व-स्वरुप में तन्मय हो
लोकपाल के अंतर्यामी आप आत्मरूप स्थित हो,
पूर्ण सर्वग्य ब्रह्माण्ड रक्षक
शासन करते जग का,
अन्य कोई शासक नही |
सर्व प्रथम ब्रह्मा उपजे
ब्रह्मा ने वेदों को बनाया,
वेद आत्म ज्ञान देते, बुद्धि देते
प्रभु मैं आपकी शरण आऊँ
मुझे बंधन मुक्त करें|

मन्त्र- १९-२१
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्दनमिवानलम् ॥१९॥
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥२०॥
तपःप्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् ।
अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसङ्घजुष्टम् ॥२१॥

हे प्रभु !
कलारहित है जो,
शांत, विमल, निर्दोष है जो
अमृत सेतु है जो,
जले हुए काष्ठ में अग्नि सम
अत्यंत ज्योर्तिमय ज्ञान रूप परम चेतन प्रभु
आपकी शरण आऊँ ,
हे शान्तिनिकेतन! शांति दें |
चर्म सम गगन को अंग से लपेट ले
आपको जान समस्त दु:खों से निवृत हो जाए
सृष्टि में कोई गगन न लपेट सके
उनके दुःख नही मिटते |
श्वेताश्वतर महा ऋषि तपस्या कर
प्रभु! आपकी कृपा से आपको जान सके,
ऋषि से परम ब्रह्म ज्ञान तत्व अन्य ऋषियों को मिला

उपदेश अभिमान पूर्वक आश्रम में जाना|

<u>मन्त्र-२२-२३</u>
वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् ।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥२२॥
यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥२३॥
प्रकाशन्ते महात्मन इति ।

हे नाथ !
पूर्व कल्प में ज्ञान हेतु उपनिषद में वर्णन किया आपने,
शांत चित मन मेरा हो
ज्ञान प्राप्त कर सकूँ,
पुत्र न हो, शिष्य न हो,
उन्हें ज्ञान कैसे मिले
देव पुत्र योग्य हो तो मिले |
आप में परम भक्ति हों,
गुरु में भक्ति हो,
मैं यह रहस्यमय ज्ञान प्राप्त कर सकूँ,
मेरे अंतस में स्पष्ट रूप से यह ज्ञान प्राप्त हो,
कृपा करे प्रभु |||

<u>||| कृष्ण यजुर्वेद वर्णित श्वेताश्वतर उपनिषद समाप्त |||</u>

सुरेश चौधरी 'इंदु'

पुरुष सूक्त

ऋगवेद

<u>पुरुष सूक्त परिचय</u>

पुरुष सूक्त वैष्णव सम्प्रदाय के 5 सूक्तों में से एक है| शेष चार सूक्त हैं नारायण सूक्तम्, श्री सूक्तम् , भू सूक्तम् और नील सूक्तम्|
पुरुष सूक्तम् को हम सबसे पहले ऋग्वेद में देखते हैं| ऋग्वेद के दसवें मंडल का 90 वां सूक्त पुरुष सूक्त है , इसके बाद हम इसे सामवेद और अथर्ववेद में भी कुछ परिवर्तन के साथ देख सकते हैं|
पुरुष सूक्त के शीर्षक पुरुष पुरुषोत्तम नारायण हैं , जो कि विराट पुरुष के रूप में हैं| उनसे ही सारी सृष्टि का निर्माण हुआ , इस सूक्त में बताया गया है कि उनके हज़ार सर , कई आँखें , कई टांगें हैं| वे हर जगह व्याप्त हैं| वे समझ से परे हैं| सारी सृष्टि उनका केवल चौथा हिस्सा है और उनका बाकी का हिस्सा अव्यक्त है
वह पुरुष ब्रह्मा के रूप में मंद रहा और अनिरुद्ध नारायण जो कि नारायण के चार रूपों में से एक है; ने कहा कि "तुम कुछ करते क्यों नहीं ? ब्रह्मा ने उत्तर दिया- " क्योंकि मैं कुछ जानता नहीं| " तब अनिरुध नारायण ने कहा - " तुम यज्ञ करो | तुम्हारी इन्द्रियाँ जो कि देवता हैं ,ऋत्विक बनेंगी| तुम्हारा शरीर हविष्य बनेगा एवं तुम्हारा हृदय यज्ञ की   वेदी बनेगा| मैं उस हविष्य को ग्रहण करूँगा| तुम अपने शरीर का बलिदान दो उससे सभी शरीर बनेंगे| ऐसा ही करो जैसा कि तुम अन्य कल्पों में करते आये हो| "
इस तरह से वह यज्ञ <u>"सर्वहूत यज्ञ"</u> हुआ { जिसमे सब कुछ की आहुति दी गयी हो } उत्पत्ति की संरचना इस प्रकार यज्ञ से हुई| इस यज्ञ में पुरुष को आहुति दी गयी| ब्रह्मा द्वारा , ऋत्विक ब्रह्मिन- देवता बने जो की

ब्रह्मा की इन्द्रियाँ थे| यज्ञ प्रकृति रुपी वेदी पर किया गया , यज्ञ की अग्नि पुरुष का ह्रदय थी ,, यज्ञ में आहुति किसकी दी गयी ?
रुष की , जिसमे सारी सृष्टि समाहित थी इस प्रकार पुरुष सूक्त प्रेम का सन्देश देता है कि पुरुष स्वयं को ही सृष्टि की अग्नि में ग्रहण करेगा ताकि सृष्टि का सृजन हो सके| इस प्रकार आहुति , बलिदान से ही सारी सृष्टि का प्रारंभ हुया , यही पुरुष सूक्तम् का सन्देश है|

पुरुष सूक्तम्

ॐ श्री गुरुभ्यो नमः
हरि ॐ
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात |
सभूमिं विश्वतो वर्त्वात्यतिष्ठद दशाङ्गुलम || १-१

सहस्त्रों मुख हैं जिनके और हैं सहस्त्रों जिनके नयन
सहस्त्रों पदों से विराजित विराट पुरुष का है बदन
विराट स्वरुप पुरुष व्याप्त समस्त ब्रह्माण्डली में
अनंत वे, नाप सकते नही बचते शेष दस अंगुली में | १-१

पुरुष एवेदं सर्वं यद भूतं यच्च भव्यम |
उताम्र्तत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति || १-२

नर वही भूत-भविष्य वर्तमान हैं शाश्वत और अप्रकट है
सृष्टि पोषित उससे, प्राकट्य होता जब छटा विकट है |१-२

एतावानस्य महिमातो जयायांश्च पूरुषः |
पादो.अस्यविश्वा भूतानि तरिपादस्याम्र्तं दिवि || १-३

अति महान नर है वो महिमा जिसकी अपरम्पार है,
प्राकट्य जो चतुरांश में बाकी अव्यक्त संसार है
अविनाशी है वह प्रभु, प्रभुत्व जिसका गुण भण्डार है
सुरक्षित रहता जो जगत में इस पार है, उस पार है |१-३

तरिपादूर्ध्व उदैत पुरुषः पादो.अस्येहाभवत पुनः |
ततो विष्वं वयक्रामत साशनानशने अभि || १-४

नारायण हैं वे व्याप्त ब्रह्माण्ड में चतुरांश से
दो तिहाई बाहर, व्यक्त उन्ही को जो निजांश है
पोषण पोषित करते जो नर मुक्त रूप से प्राप्य है

जो रहते नयन सन्मुख, उन्हें सबरूप में शक्य है वे | १-४

तस्माद विराळ अजायत विराजो अधि पूरुषः |
स जातोत्यरिच्यत पश्चाद भूमिमथो पुरः || १-५

पूर्ण पुरुष नारायण से उत्पन्न हुआ ब्रह्माण्ड निराला
नारायण नाभि से उत्पन्न हुए ब्रह्मा देव विशाला
रचा तब ब्रह्मा ने सृष्टि, पृथ्वी, जीव अनुपम सारा
शरीर रूप दिया तब जीवों को अलग अलग मनोहारा | १-५

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत: सम्भृतं पृषदाज्यम् |
पशूंस्न्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ||६||

प्राप्त हुआ घृत सर्वश्रेष्ठ प्रकृति यज्ञ से तदुपरांत
करने पूजन विराट पुरुष नारायण की पूर्ण शांत
वायुदेव से सम्बंधित सब पशु मृग गौ अश्वादि हुए
विराट पुरुष द्वारा उत्पन्न ये जग के जीवादि हुए | १-६

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतSऋचः सामानि जज्ञिरे |
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ||७||

नारायण ने रचे ऋग्वेद सामवेद ग्रन्थ हित कारी
इन वेदों से प्रकट हुए यजुर्वेद अथर्ववेद मनहारी | १-७

तस्मादश्वाSअजायन्त ये के चोभयादतः |
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताSअजावयः ||८||

तत्पश्चात विराट पुरुष ने किये उत्पन्न चतुस्पद
दो दाँतों वाले अश्व, बकरियाँ, गौवें भेड़ें निस्पद | १-८

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पूरुषं जातमग्रत:|
तेन देवाSअयजन्त साध्याSऋषयश्च ये ||९||

पुजनीय श्री नारायण यज्ञ पुरुष हुए प्रकट थे प्रथम
मंत्रदृष्टा ऋषियों योगियों ने किया अभिसक्त परम
सृष्टि के पूर्व विद्यमान ब्रह्माण्ड था सृष्टिरूप यज्ञ
प्रादुर्भाव हुआ आत्मज्ञ नारायण का जो सर्वज्ञ | १-९

यत्पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् |
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादाSउच्येते ||१०||

सुधिजन करते कल्पना स्वरुप कैसा है नारायण का
प्रकट हुए जो संकल्प ले विराट यज्ञ पुरुष परायण का
आनन्, बाहु , पद, कैसे हैं कितने हैं सोचें ज्ञानी
देह धारी वह सम्पूर्ण है, है वह जग पुरुष ध्यानी | १-१०

ब्राह्मणोSस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य: कृत: |
ऊरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्या शूद्रोSअजायत ||११||

परम ब्रह्म का मुख ब्राह्मण सा विवेकी ज्ञानवान है
बाजु परमात्मा के क्षत्रिय सदृश पराक्रमी बलवान हैं
वैश्य की पोषण शक्ति उसकी जंघा में विद्यमान है
चरण में विराजित सेवाधर्मी व्यक्ति होता महान है | १-११

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो: सूर्यो अजायत |
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ||१२||

चन्द्रमा का हुआ प्राकट्य प्रभु मन से, सूर्य थे नयन
द्वय कर्ण से वायु एवं प्राण का हुआ तब उदगमन
नारायण के मुखद्वार से हुआ अग्नि का प्रगटीकरण
प्राकट्य कर प्रभु हुए प्रसन्न खिला उनका अंतर्मन | १-१२

नाभ्याSआसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत |
पद्भ्यां भूमिर्दिश: श्रोत्रात्तथा लोकांर्Sअकल्पयन् ||१३||

नाभि से अंतरिक्ष मस्तिष्क से द्युलोक चरण से धरा
कर्ण से दिशाएं रचित सृष्टि युग पुरुष की अति सुंदरा | १-१३

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत |
वसन्तोSस्यासीदाज्यं ग्रीष्मSइध्म: शरद्धवि: ||१४||

सृष्टि के शुभारम्भ में देवों ने माना परम को हवि
किया महान यज्ञ आरम्भ आमंत्रित ऋतुओं की छवि
बसंत घृत बन, ग्रीष्म समिधा बन आहुत को थी तत्पर
शरद ऋतु हवि में परिवर्तित हुई शुभ हो यज्ञ शुभकर | १-१४

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि: सप्त: समिध: कृता:|

देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरुषं पशुम् ||१५||

सप्त सिन्धु परिधि व् इक्कीस छंद समिधा से गया बाँधा
विराट पुरुष ही को हव्य भावना से यज्ञ में साधा | १-१५

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् |
ते ह नाकं महिमान: सचन्त यत्र पूर्वे साध्या: सन्ति देवा: ||१६||

श्रेष्ठ धर्मपरायण देव किये यजन समृद्धि लाने को
नारायण यज्ञ से यज्ञरूप विराट सत्ता पाने को
यज्ञ ही जीवन जीते धार्मिक महात्मन पूर्वकाल से
प्राप्य उनको स्वर्गलोक साध्य देवस्थल अंतराल से | १-१६

ॐ शांति: ! शांति: !! शांति: !!!

अध्भ्या संभूता पृथ्वियाइ रासस्चा विश्वकर्मानस संवर्ताधि
तस्यास त्वास्था विधाध द्दपमेती तद पुरुषस्य विश्व माजनम अग्रे | २-१

सृष्टि है वहीँ जहाँ है जल और पृथ्वी, है जो सर्वत्र
सर्वकरता परम पिता नारायण ने बनाया पुरुष तत्र
पुरुष चौदह भुवन में नर रूप से है व्यापक तथ्य है
सृष्टि आरम्भ से पूर्व हुई उसकी रचना यह सत्य है | २-१

वेदाहम एतं पुरुषम महानतम आदित्यवर्ण तमासा परस्तात
तमेवं विद्वान अमृतैह भवती नान्य पन्था विद्यते अनन्यय | २-२

वह परम पुरुष महान हैं नारायण जानता जग समस्त
भानु सा द्युतमान तमस हरने वाला वह मार्ग प्रशस्त
जो जानता तथ्य गहन उसे प्राप्य इस जन्म में मुक्ति
अन्य कोई मार्ग नही जिससे प्राप्य हो यह मोक्ष सूक्ति | २-२

प्रजापतिस चरती गर्भेंतः आजय्मानो बहुदा विजायते
तस्य धीर परिजानन्ति योनिम मरीचिनोमपदामिच्चान्ति वेदशः || २-३

अज़र अमर अविनाशी जग स्वामी विराजित सृष्टि में ही
विद्वजन पहचानते मर्म वास्तविक रुप दृष्टि में ही
विज्ञ वेदों के पंडित मरीचि से ज्ञानी होते स्वतः ही

नारायण को जान करते प्राप्त परम पद स्वभावतः ही | २-३

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः
पूर्वो यो देवेभ्यो जातः रुचायाह ब्राह्माहे | २-४

देव पूर्व प्रकट हुए उस परम ब्रह्म को कोटिशः नमस्कार
देवों के अध्यात्मिक गुरु दिया दिव्य शक्ति का पुरूस्कार | २-४

रुचं ब्राह्मं जनयन्तः देवा अग्ने तधा ब्रुवन
यस्तैव ब्रह्मानो विद्यात तस्य देवा असं वसे || २-५

प्रतिपादन करते जिस परमब्रह्मसुख का ये गुणीदेव
अपनाते देव को ब्रह्म प्राप्ति में जो प्रतिबद्ध सदैव | २-५

ह्रस्चः ते लक्ष्मिस्च: पत्नियाव अहुरातरे पार्श्वे,
नक्षत्रनि रूपं अशिवनौ व्यतम | २-६

नारायण लक्ष्मी एवं ह्री भार्या हैं आश्विन देव मुख
दिवा रात्रि वाम-दाहिने भाग, शरीर अंग तारे प्रमुख | २-६

इश्थं मनिशाना अमम मनिशाना सर्वं मनिशाना |२-७
हे परम पिता परमेश्वर! विनती इतनी सुन लीजिये
सुख-ज्ञान के साथ दोनो लोकों की सर्वकीर्ति दीजिये | २-७

नासदीय सूक्त

ऋगवेद

सुरेश चौधरी 'इंदु'

<u>नासदीय सूक्त-परिचय</u>

नासदीय सूक्त ब्रह्माण्ड एवं सृष्टि की संरचना को बताता है| यह ऋग्वेद से लिया गया है| ऋग्वेद के १० मंडल में १२९ वे सूक्त में इसे वर्णित किया गया है| ऋग्वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ में से है| १० वे मंडल में जीवन की आधारभूत संरचना को विस्तृत रूप से बताया गया है| पुरुष सूक्तम्, नारायण सूक्तम्, श्री सूक्तम् , भू सूक्तम् और नील सूक्तम् | सृष्टि की रचना के सन्दर्भ में जितने ग्रन्थ हैं, सब की अलग अलग धारण है| शिव पुराण, देवी भागवत पुराण, स्कंध पुराण में इष्ट प्रधान संरचना है तो भागवत महापुराण में एक ब्रह्म स्वरुप परम पिता को ही मन गया है एवं सृष्टि उनके आज्ञानुसार बनी | यही तात्पर्य, वेदों में उपनिषद में भी दिया गया है बस कुछ विवरण विभिन्न प्रकार से है | नासदीय सूक्त के देव भाववृत्त हैं एवं ऋषि प्रजापति हैं, ब्रह्माण्ड निर्माण का यह तथ्य हजारों वर्ष पूर्व लिखा गया है एवं वैज्ञानिक दृष्टि से भी सत्य है |

<u>नासदीय सूक्त</u>

सृष्टि-उत्पत्ति सूक्त
नासदासीन्नो सदासात्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परोयत् ।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नंभः किमासीद् गहनंगभीरम् ॥१॥

न तू था , न स्वर्गलोक था, न भू लोक था न था पाताल
जल ही जल था, प्रलय था गहन प्रवेश योग्य था क्या काल
अभावात्मक तत्व की पहचान नही| न था गगन विशाल

फिर कहाँ था आवरण तत्व करता जो संरक्षण कमाल |

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।
अनीद वातं स्वधया तदेकं तस्मादधान्यन्न पर किं च नास ॥२॥

मृत्यु विहीन मंडल था अमृत्यु का था काल गुंजित
रात्रि-दिवा ज्ञान का था अभाव, अदृश्य था वह गणित
ब्रह्म सार का प्राण तत्व शून्य भी था विद्यमान उदित
उस से परे कुछ न था, न थी माया शून्य ब्रह्म सहित |

तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकं॥३॥

पूर्व सृष्टि के विप्लव तमस मंडित विद्य जगसार था
अज्ञायमान हो सम्पूर्ण जग जलप्लावित उदगार था
कार्य कारण के मिलन बिंदु का व्यापकरूप अभाव था
अज्ञान था एकरूप ईश्वर संकल्प तप प्रादुर्भाव था |

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

परम ब्रह्म परमेश्वर ने उत्पन्न की सर्वप्रथम कामना
करे सृष्टि की रचना यह बीज रूप कारण बना धारणा
भौतिक जग को बंधन से कामरुप कारण में सँवारना
क्रांतदर्शी ऋषियों का ज्ञान भाव विलक्षण अवधारणा |

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

भानुप्रभा सम व्यापक, अविद्या काम है बीज कारण सृष्टि के
सर्वप्रथम जग मध्य अंत या था तिरछा या था नीचे दृष्टि के

सर्वज्ञ समभाव था, कर्मधार्य था, जीव भाव था यह गगन तत्व
प्रकृति रूप था, भोग्य था, भोक्ता पदार्थ पूर्ण उत्कृष्ट था वह सत्व |

को
आद्धा
वेद क
इह प्र

वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः|
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥

न देव न मानव उत्पन्न हुआ कोई सृष्टि से पहले
कौन है जो वास्तविकता सृष्टि संरचना की कहले
उपादान निमित्त कारणों से हुई उत्पन्न यह सृष्टि
कारण विषय बोध जग उत्पति का हुआ क्यों न अभिष्टि |

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

विविध सृष्टियाँ रचित एक ब्रहम प्रभु द्वारा कर धारण
नही धर सके अन्य कब छोड़ उपादान निमित्त कारण
सृष्टि स्वामी प्रभु प्रतिष्ठित जग आनंदरूप प्रकाशित
आनंद रूप परमात्मा करे सृष्टि रचना प्रतिपादित |

200 वेद से वेदांत तक

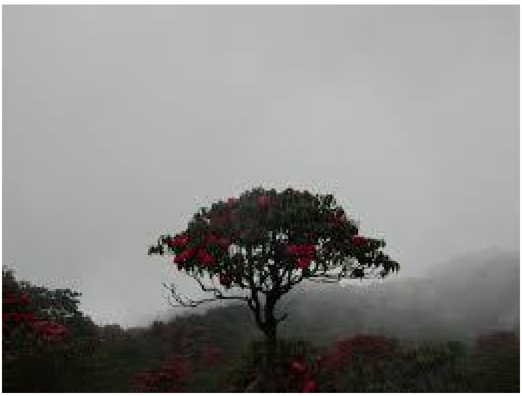

सुरेश चौधरी ‘इंदु’